॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

(संस्करण १,६०,०००)

विषय-सूची

कल्याण, सौर ज्येष्ठ, श्रीकृष्ण-संवत् ५२०५, मई १९७९

चित्र-सूची

Free of charge] जय विराट जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते ॥ [बिना मूल्य

आदि सम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार

सम्पादक, मुद्रक एवं प्रकाशक—मोतीलाल जालान, गीताप्रेस, गोरखपुर

[भारत-सरकारद्वारा उपलब्ध कराये गये रियायती मूल्यके कागजपर मुद्रित]

सती सावित्री और धर्मराज

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

कल्याण

ध्येयः सदा सवितृमण्डलमध्यवर्ती नारायणः सरसिजासनसंनिविष्टः ।
केयूरवान् मकरकुण्डलवान् किरीटी हारी हिरण्मयवपुर्धृतशंखचक्रः ॥

वर्ष ५३ } गोरखपुर, सौर ज्येष्ठ, श्रीकृष्ण-संवत् ५२०५, मई १९७९ { संख्या ५
पूर्ण संख्या ६३०

सावित्रीपर धर्मराजकी अनुकम्पा

एष भद्रे मया मुक्तो भर्ता ते कुलनन्दिनि ।
तोषितोऽहं त्वया साध्वि वाक्यैर्धर्मार्थसंहितैः ।
अरोगस्तव नेयश्च सिद्धार्थः स भविष्यति ॥

(महा० वन० २९७ । ५६)

(सावित्रीकी बातोंसे प्रसन्न होकर धर्मराज बोले —)'भद्रे ! यह लो, मैंने तुम्हारे पतिको छोड़ दिया । कुलनन्दिनि ! तुमने अपने धर्मार्थयुक्त वचनोंद्वारा मुझे पूर्ण संतुष्ट कर दिया है । साध्वी ! (अब) यह सत्यवान् नीरोग, सफलमनोरथ तथा तुम्हारे द्वारा ले जाने योग्य हो जायगा ।'

कल्याण-वाणी

ऊँचा-से-ऊँचा पद-गौरव, बड़ी-से-बड़ी सम्पत्ति, दुनियाभरका सम्मान, अचल कीर्ति, अत्यन्त गौरवमयी विद्या, लौकिक विज्ञानका अद्भुत आविष्कार, साहित्यकी सरस मार्मिकता, नैसर्गिक कवित्वशक्ति, मनचाहा सुखद परिवार और स्नेहमय हृदयसे पालन-पोषण करनेमें समर्थ माता-पिता आदि कोई भी सहज आकर्षक या परम आवश्यक प्रिय वस्तु यदि भगवान्‌के प्रेमसे रहित है, भगवत्प्रेममें सहायक नहीं है तो उसके त्यागमें ही भगवत्प्रेमीको सुख मिलता है। जगत्‌का कोई पदार्थ रहे तो प्रभु-प्रेमको बढ़ानेवाला होकर रहे— प्रभुके पूजनकी सामग्री होकर रहे; नहीं तो उसकी कोई भी आवश्यकता नहीं। जितना शीघ्र उसका सङ्ग छूटे, उतना ही मङ्गल है।

जो देश, स्थान, समाज, व्यक्ति, संयोग-वियोग, वेष, भाषा-साहित्य, विज्ञान और भोजन-वस्त्र भगवान्‌के प्रेमको जगानेवाला है, भगवत्प्रेमको बढ़ानेवाला है, भगवत्प्रेमसे पूर्ण है—बस, प्रेमी अपना सब कुछ खोकर, किसी भी बातकी तनिक भी परवा न कर— उसीको चाहता है, उसीको ग्रहण करता है, उसीमें रमण करता है। प्रियतमकी प्रिय स्मृति दिलानेवाला होनेके कारण वह उसके मनको परम प्रिय है, फिर चाहे लौकिक दृष्टिसे वह पदार्थ कितना ही हीन और दुःखदायी क्यों न माना जाता हो।

जिसके हृदयमें प्रभुके प्रति अनुराग उत्पन्न हो गया, जो हृदय निर्मल प्रेमके कारण भगवान्‌के विरह-तापसे तप्त हो उठा, उसमें दूसरी वस्तु रह नहीं सकती—समा नहीं सकती। वहाँ अन्यके लिये गुंजाइश ही नहीं रह जाती। जिनका हृदय ऐसा अनन्य प्रभुप्रेममय हो गया है, उन्हींका जीवन सार्थक है, वे धन्य हैं।

ऐसे प्रभुप्रेमकी प्राप्तिमें प्रभुकी अहैतुकी दया और उनकी सुहृद्‌ता ही प्रधान उपाय है। जिनपर भगवान्‌की दया होती है, उनपर सबको दया करनी पड़ती है। सबको भगवत्प्रेरणासे स्वाभाविक ही उनके अनुकूल बन जाना पड़ता है। बाधक साधक हो जाते हैं और विघ्न भी पथप्रदर्शकका काम करने लगते हैं।

भगवान्‌की दयाका अवलम्बन जीवके लिये परम अवलम्बन है। इससे बड़ा सहारा और कोई नहीं हो सकता। दयापर विश्वास करनेवाले मनुष्योंको तो इसके प्रमाणकी आवश्यकता ही नहीं होती। जिसने भगवान्‌की दयाका आश्रय लिया, वही स्नेहमयी जननीकी सुखद गोदकी भाँति भगवान्‌की निरापद गोदमें सदाके लिये जा बैठा। परंतु सुदृढ़ और विश्वासके बिना ऐसा नहीं हो सकता। मनुष्य विश्वास हुए बिना भगवान्‌की दयाका आश्रय नहीं लेता, भगवान्‌की दया बिना मनुष्यके मनसे जगत्‌के विषयोंका आश्रय नहीं छूटता और जबतक विषयोंका आश्रय है, तबतक किसी प्रकार भी सच्चे सुख और सच्ची शान्तिकी झाँकी नहीं हो सकती। विषयोंका आश्रय तो दूरकी बात है, विषयोंकी सूक्ष्म वासना भी वास्तविक शान्तिका उदय नहीं होने देती। बात सर्वथा सच है, गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी भी कहते हैं कि जबतक विषयोंकी झूठी मिठासका माधुर्य बना है, तबतक अमृतसे हजारगुनी मीठी रामभक्ति भी फीकी ही लगती है।

तुलसी जौ लौं विषय की मुधा माधुरी मीठि।
तौ लौं सुधा सहस्र सम राम भगति सुठि सीठि॥

(दोहावली ८३)

—'शिव'

मोक्षस्वरूप विमर्श

(२)

(अनन्तश्रीविभूषित पूज्यपाद स्वामीजी श्रीकरपात्रीजी महाराज)

(गताङ्क पृष्ठ-सं० १०० से आगे)

पूर्वोक्त प्रकारसे व्यष्टि, समष्टि, स्थूल, सूक्ष्मकारणरूप सम्पूर्ण जगत्को प्रणवरूप परब्रह्ममें विलयकर निरुपम सच्चिदानन्द संविद्स्वरूप ब्रह्मका साक्षात्कार कर साधक स्वयं भी ब्रह्म हो जाता है। तत्त्वतः यह जीव ब्रह्म ही है। सभी उपनिषदों एवं सूतसंहितादिमें यह बात विस्तारसे निरूपित है। 'यज्ञवैभवखण्ड'में भी आता है कि जीव सुषुप्तिमें किंचित् ब्रह्मानन्दांशताको प्राप्त करता है—

स्वप्ने स जीवः सुखदुःखभोक्ता
स्वमायया कल्पितजीवलोके।
सुषुप्तिकाले सकले विलीने
तमोऽभिभूतः सुखरूपमेति॥

यही बात उपनिषदोंमें 'सुखमहमस्वाप्सम् नाहं किंचिदवेदिषम्' से सुषुप्ति आदिके अनुभवके रूपमें कही गयी है। वस्तुतः जीव, बन्धन, संसार-मोक्षादि गुणतः ही हैं, स्वरूपतः नहीं। श्रीमद्भागवतमें भगवान्का भी कथन है—

बद्धो मुक्त इति व्याख्या गुणतो मे न वस्तुतः।
गुणस्य मायामूलत्वान्न मे मोक्षो न बन्धनम्॥
देहस्थोऽपि न देहस्थो विद्वान् स्वप्नाद् यथोत्थितः।
अदेहस्थोऽपि देहस्थः कुमतिः स्वप्नदृग् यथा॥
(श्रीमद्भा० ११। ११। १, ८)

'आत्मा बद्ध है या मुक्त, इस प्रकारकी व्याख्या या व्यवहार मेरे अधीन रहनेवाले सत्त्वादि गुणोंकी उपाधिसे ही होता है, वस्तुतः—तत्त्वदृष्टिसे नहीं। सभी गुण मायामूलक हैं—इन्द्रजाल हैं—जादूके खेलके समान हैं। इसलिये तत्त्वतः न मेरा मोक्ष है, न तो मेरा बन्धन ही है। ज्ञानसम्पन्न पुरुष भी मुक्त ही है। जैसे स्वप्न टूट जानेपर जगा हुआ पुरुष स्वप्नके स्मर्यमाण शरीरसे कोई सम्बन्ध नहीं रखता, वैसे ही ज्ञानी पुरुष सूक्ष्म और स्थूल शरीरमें स्थित रहनेपर भी मनमें उनसे किसी प्रकारका सम्बन्ध नहीं रखता। परंतु अज्ञानी पुरुष वास्तवमें शरीरसे कोई सम्बन्ध न रखनेपर भी अज्ञानके कारण शरीरमें ही स्थित रहता है, जैसे स्वप्न देखनेवाला पुरुष स्वप्न देखते समय स्वाप्निक शरीरमें बँध जाता है।' यही बात माण्डूक्यकारिकाकी निम्नाङ्कित कारिकामें कही गयी है—

न निरोधो न चोत्पत्तिर्न बद्धो न च साधकः।
न मुमुक्षुर्न वै मुक्त इत्येषा परमार्थता॥
(२। ३२)

इस प्रकार शोक-मोह, सुख-दुःख, शुभ और अशुभ सब कुछ मायामय ही हैं, तत्त्वतः तो केवल ब्रह्म ही है। जैसे सूर्य वायु, आकाश आदिमें असंसक्त हैं, वैसे ही ज्ञानवान् अपने तथा विश्वको सर्वत्र ब्रह्मरूपमें देखता हुआ असंसक्त रहता है—

न तथा बद्ध्यते विद्वांस्तत्र तत्रादयन् गुणान्।
प्रकृतिस्थोऽप्यसंसक्तो यथा खं सवितानिलः॥
(श्रीमद्भा० ११। ११। १२)

गुण ही सभी कर्मोंका कर्ता-भोक्ता है—ऐसा जानकर विद्वान् पुरुष कर्मवासना और फलोंमें नहीं बँधता। ज्ञानिजन प्रकृतिमें रहकर भी वैसे ही असङ्ग रहते हैं, जैसे स्पर्श आदिसे आकाश, जलकी आर्द्रता आदिसे सूर्य और गन्ध आदिसे वायु असंस्पृष्ट रहते हैं।

हंसस्वरूप भगवान् भी सनकादिके प्रश्नोत्तरमें यही कहते हैं—

ईक्षेत विभ्रममिदं मनसो विलासं
दृष्टं विनष्टमतिलोलमलातचक्रम्।

विज्ञानमेकमुरुधेव विभाति माया
स्वप्नस्त्रिधा गुणविसर्गकृतो विकल्पः ॥
(श्रीमद्भा० ११ । १३ । ३४)

'यह जगत् मनका विलास है, दीखनेपर भी नष्टप्राय है । यह अलातचक्र (लुकारियोंकी बनेठी)के समान अत्यन्त चञ्चल है और भ्रममात्र है—ऐसा समझना चाहिये । ज्ञाता और ज्ञेयके भेदसे रहित एक ज्ञानस्वरूप आत्मा ही अनेक-सा प्रतीत हो रहा है । यह स्थूल शरीर इन्द्रिय और अन्तःकरणरूप तीन प्रकारका विकल्प गुणोंके परिणामकी रचना है, स्वप्नके समान मायाका खेल है और अज्ञानसे कल्पित है ।' जबतक व्यक्तिकी युक्तियुक्त ज्ञानसे भेदबुद्धि निवृत्त नहीं होती, तबतक वह जागता हुआ भी सो रहा है । जैसे स्वप्नमें मनुष्य अपनेको झूठे ही जागता देखता है, वैसे ज्ञानीके जागरणका भान भी भ्रम है—

यावन्नानार्थधीः पुंसो न निवर्तेत युक्तिभिः ।
जागर्त्यपि स्वपन्नज्ञः स्वप्ने जागरणं यथा ॥
(श्रीमद्भा० ११ । १३ । ३०)

श्रीमद्भागवतमें उद्धवजीके प्रकृति-पुरुषकी अन्योन्याश्रयता तथा परस्पर सम्बन्धके प्रश्नपर श्रीभगवान् यही कहते हैं कि यह सब कुछ मुझमें ही मायासे कल्पित है । यह सब कुछ मायिक एवं मिथ्या होते हुए भी मेरा भजन न करनेवालोंके लिये इसका संतरण दुस्तर एवं दुरत्यय ही है—

दृग्रूपमार्कं वपुरत्र रन्ध्रे
परस्परं सिध्यति यः स्वतः खे ।
आत्मा यदेषामपरो य आद्यः
स्वयानुभूत्याखिलसिद्धसिद्धिः ।
एवं त्वगादि श्रवणादि चक्षु-
र्जिह्वादि नासादि च चित्तयुक्तम् ॥
योऽसौ गुणक्षोभकृतो विकारः
प्रधानमूलान्महतः प्रसूतः ।
अहं त्रिवृन्मोहविकल्पहेतु-
र्वैकारिकस्तामस ऐन्द्रियश्च ॥
आत्मा परिज्ञानमयो विवादो
ह्यस्तीति नास्तीति भिदार्थनिष्ठः ।
व्यर्थोऽपि नैवोपरमेत पुंसां
मत्तः परावृत्तधियां स्वलोकात् ॥
(श्रीमद्भा० ११ । २२ । ३१–३३)

'नेत्रेन्द्रिय अध्यात्म है, उसका विषय रूप अधिभूत है और नेत्रगोलकमें स्थित सूर्यदेवताका अंश अधिदैव है । ये तीनों परस्पर एक दूसरेके आश्रयसे सिद्ध होते हैं और इसलिये अध्यात्म, अधिदैव और अधिभूत—ये तीनों ही परस्पर सापेक्ष हैं । परंतु आकाशमें स्थित सूर्यमण्डल इन तीनोंकी अपेक्षासे मुक्त है; क्योंकि वह स्वतःसिद्ध है । इसी प्रकार आत्मा भी उपर्युक्त तीनों भेदोंका मूलकारण उनका साक्षी और उनसे परे है । वही अपने स्वयंसिद्ध प्रकाशसे समस्त सिद्ध पदार्थोंकी मूलसिद्धि है । उसीके द्वारा सबका प्रकाश होता है । जिस प्रकार चक्षुके तीन भेद बताये गये हैं, उसी प्रकार त्वचा, श्रोत्र, जिह्वा, नासिका और चित्त आदिके भी तीन-तीन भेद हैं । प्रकृतिसे महत्तत्त्व बनता है और महत्तत्त्वसे अहंकार । इस प्रकार यह अहंकार गुणोंके क्षोभसे उत्पन्न हुआ प्रकृतिका ही एक विकार है । अहंकारके भी तीन भेद हैं—सात्त्विक, तामस और राजस । यह अहंकार ही अज्ञान और सृष्टिकी विविधताका मूलकारण है । आत्मा ज्ञानस्वरूप है, उसका इन पदार्थोंसे न तो कोई सम्बन्ध है और न उसमें कोई विवादकी ही बात है । अस्ति-नास्ति (है, नहीं), सगुण-निर्गुण, भाव-अभाव, सत्य-मिथ्या आदि रूपसे जितने भी वाद-विवाद हैं, सबका मूलकारण भेददृष्टि ही है । इसमें संदेह नहीं कि इस मायासम्बन्धी विवादका भी कोई प्रयोजन नहीं है, यह सर्वथा व्यर्थ है; पर जो लोग 'अहम्'से—अपने वास्तविक स्वरूपसे विमुख हैं, वे इस मायिक विवादसे मुक्त नहीं हो सकते ।' (क्रमशः)

ब्रह्मलीन परमश्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके अमृत-वचन

[धर्मकी आवश्यकता]

वेद-शास्त्र-पुराण और संत-महात्माओंके वचनों और महज्जनोंके आचरणोंसे यही सिद्ध होता है कि संसार धर्मपर ही प्रतिष्ठित है, धर्मसे ही मनुष्य-जीवनकी सार्थकता है, धर्म ही मनुष्यको पापोंसे बचाकर उन्नत जीवनमें प्रवेश करवाता है, धर्मबलसे ही विपत्तिपूर्ण संसार और परलोकमें जीव दुःखके महार्णवसे पार उतर सकता है। हिंदू-शास्त्रकार और संतोंने तो इन सिद्धान्तोंकी बड़े ही जोरसे घोषणा की है, परंतु अन्यान्य जातियोंमें भी धर्मको सदा ऊँचा स्थान मिलता आया है। सभीने धर्मबलसे ही अपनेको बलवान् समझा है। अबतक सब जगह यही माना गया है कि धर्मके बिना मनुष्यका जीवन पशु-जीवन-सदृश हो जाता है। परंतु अब कुछ समयसे दुनियाँमें एक नयी हवा चली है। जहाँ धर्मको जीवनकी उन्नतिका एक प्रधान साधन समझा जाता था, वहाँ अब कुछ लोग धर्मको पतनका कारण बतलाने लगे हैं!

बहुत वर्षों पहले समाचार-पत्रोंमें यह बात प्रकाशित हुई थी कि रूसी 'ईश्वर-विरोधी-मण्डल'के अनुरोधसे वहाँकी सोवियत यूनियनने अपने सदस्योंको किसी भी धार्मिक कार्यमें सम्मिलित न होनेके लिये आज्ञा-पत्र निकाला है। इससे पहले ईश्वरका इस प्रकार विधि-द्वारा विरोध करनेकी बात कहीं सुननेमें नहीं आयी थी। अवश्य ही पुराणोंमें हिरण्यकश्यप-सरीखे दैत्योंके नाम मिलते हैं, जिसने प्रह्लादको ताड़ना दी थी। रावण-राज्यमें भी, जो अत्याचारके लिये विख्यात है, शायद ईश्वरको न माननेका कानून नहीं था, होता तो विभीषण-सदृश ईश्वरभक्त उसके राज्यमें कैसे रह सकते थे? यह सत्य है कि संसारमें ऐसे लोग बहुत कालसे चले आते हैं, जो ईश्वरकी सत्ताको स्वीकार नहीं करते; परंतु उन लोगोंने भी धर्मका कभी विरोध नहीं किया। बड़े-बड़े अनीश्वरवादियोंने भी जगत्‌को ऐहिक सुख पहुँचानेके लिये धर्मका पालन और पक्ष भी किया है। धर्मका स्वरूप कुछ भी हो, परंतु धर्मका पालन प्रत्येक देश और जातिमें सदासे चला आता है।

इस समय यह धर्म-विरोधी आन्दोलन केवल रूसमें ही नहीं हो रहा है, यूरोप, अमेरिका, एशिया और अफ्रिकाके ईसाई मुसलमान और बौद्ध सभीमें न्यूनाधिकरूपसे इस प्रकारके अन्य आन्दोलनोंका सूत्रपात हो गया है। सबसे अधिक दुःखकी बात तो यह है कि धर्म-प्राण भारतवर्षमें भी आज ईश्वर और धर्मके तत्त्वसे अनभिज्ञ होनेके कारण कुछ लोग यह कहने लगे हैं कि 'धर्म ही हमारे सर्वनाशका कारण है, धर्मके कारण ही देश परतन्त्र हो चुका था धर्म ही हमारे सर्वाङ्गीण उत्थानमें प्रधान बाधक है।' इस प्रकार कहने और माननेवाले लोग, ईश्वर और धर्मवादियोंको मूर्ख समझते हैं। उन्हें अपनी भूल समझमें नहीं आती और सहज ही इसका समझमें आना भी कठिन ही है; क्योंकि जब मनुष्य अपनेको सर्वापेक्षा अधिक बुद्धिमान् और विद्वान् समझने लगता है, तब उसे अपनी रायके प्रतिकूल दूसरेकी अच्छी-से-अच्छी सम्मत्ति भी पसन्द नहीं आती। इस 'धर्मध्वंसकारी' आन्दोलनका परिणाम क्या होगा सो कुछ भी समझमें नहीं आता, तो भी शब्द, युक्ति और अनुमान-प्रमाणसे यही अनुमान होता है कि इससे देशकी बड़ी दुर्दशा होगी। धर्महीन मनुष्य उच्छृङ्खल हो जाता है और ऐसे मनुष्योंका समूह जितना अधिक बढ़ता है, उतना ही द्वेष-द्रोहका दावानल अधिक जलता है, जिससे सभीको दुःख भोगना पड़ता है!

धर्म ही मनुष्यको संयमी, साहसी, धीर, वीर, जितेन्द्रिय और कर्तव्यपरायण बनाता है। धर्म ही दया, अहिंसा, क्षमा, परदुःख-कातरता, सेवा, सत्य और ब्रह्मचर्यका पाठ सिखाता है। मनु महाराजने धर्मके दस लक्षण बतलाये हैं—

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥
(६। ९२)

'धृति, क्षमा, मनका निग्रह, अस्तेय, शौच, इन्द्रियनिग्रह, निर्मल बुद्धि, विद्या, सत्य और अक्रोध— ये दस धर्मके लक्षण हैं।'

महाभारतमें कहा है—

अद्रोहः सर्वभूतेषु कर्मणा मनसा गिरा।
अनुग्रहश्च दानं च सतां धर्मः सनातनः॥
(वनपर्व २९७। ३५)

'मन, वाणी और कर्मसे प्राणिमात्रके साथ अद्रोह, सबपर कृपा और दान—यही साधु पुरुषोंका सनातन-धर्म है।'

पद्मपुराणमें धर्मके लक्षण बतलाये हैं—

ब्रह्मचर्येण सत्येन मखपञ्चकवर्तनैः।
दानेन नियमैश्चापि क्षान्त्या शौचेन वल्लभः॥
अहिंसया सुशान्त्या च अस्तेयेनापि वर्तनैः।
एतैर्दशभिरङ्गैस्तु धर्ममेव प्रपूरयेत्॥
(प० पु० द्वितीय खण्ड, अ० १२। ४६-४७)

'हे प्रिय! ब्रह्मचर्य, सत्य, पञ्चमहायज्ञ, दान, नियम, क्षमा, शौच, अहिंसा, शान्ति और अस्तेयसे व्यवहार करना—इन दस अङ्गोंसे धर्मकी ही पूर्ति करे।'

अब बतलाइये, क्या कोई भी जाति या व्यक्ति मन और इन्द्रियोंकी गुलाम, विद्या-बुद्धिहीन, सत्य-क्षमारहित, मन, वाणी, शरीरसे अपवित्र, हिंसापरायण, अशान्त, दानरहित और पर-धन हरण करनेवाला होकर कभी सुखी या उन्नत हो सकता है? प्रत्येक उन्नतिकामी जाति या व्यक्तिके लिये क्या धर्मके इन लक्षणोंको चरित्रगत करनेकी नितान्त आवश्यकता नहीं है? क्या धर्मके इन तत्त्वोंसे हीन जाति कभी जगत्में सुखपूर्वक टिक सकती है? धर्मके नामतकका मूलोच्छेद चाहनेवाले सज्जन एक बार गम्भीरतापूर्वक पक्षपातरहित हो यदि शान्त-चित्तसे विचार करें तो उन्हें भी यह मालूम हो सकता है कि धर्म ही हमारे लोक-परलोकका एकमात्र सहायक और साथी है। धर्म मनुष्यको दुःखसे निकालकर सुखकी शीतल गोदमें ले जाता है, असत्यसे सत्यके पास ले जाता है, और वह अन्धकारपूर्ण हृदयमें अपूर्व ज्योतिका प्रकाश कर देता है। धर्म ही चरित्र-संगठनमें एकमात्र सहायक है। धर्मसे ही अधर्मपर विजय प्राप्त हो सकती है। धर्म ही अत्याचारका विनाश कर धर्मराज्यकी स्थापनामें हेतु बनता है। पाण्डवोंके पास सैन्यबलकी अपेक्षा धर्मबल अधिक था, इसीसे वे विजयी हुए। अस्त्र-शस्त्रोंसे सब भाँति सुसज्जित बड़ी भारी सेनाके स्वामी महापराक्रमी रावणका धर्मत्यागके कारण ही अधःपतन हो गया। कंसको धर्मत्यागके कारण ही कलङ्कित होकर मरना पड़ा।

महाराणा प्रताप और छत्रपति शिवाजीका नाम हिंदू-जातिमें धर्माभिमानके कारण ही अमर है। गुरु गोविन्दसिंहके पुत्रोंने धर्मके लिये ही दीवारमें चुना जाना सहर्ष स्वीकार कर लिया था। मीराबाई धर्मरक्षाके लिये जहरका प्याला पी गयी थी। ईसामसीह धर्मके लिये ही शूलीपर चढ़े थे। भगवान् बुद्धने धर्मके लिये ही शरीर सुखा दिया था। युधिष्ठिरने धर्मपालनके लिये ही कुत्तेको साथ लिये बिना अकेले सुखमय स्वर्गमें जाना अस्वीकार कर दिया था। इसीसे आज इन महानुभावोंके नाम अमर हो रहे हैं। धर्म जाता रहेगा तो मनुष्योंमें बचेगा ही क्या? धर्मके अभावमें परधन और पर-स्त्रीका अपहरण करना, दीनोंको दुःख पहुँचना तथा यथेच्छाचार करना और भी सुगम हो जायगा। सर्वथा धर्मरहित जगत्की कल्पना ही विचारवान् पुरुषके हृदयको हिला देती है।

अतएव अभीसे धर्मभीरु जनताको सावधानीके साथ धर्मकी रक्षाके लिये कटिबद्ध हो जाना चाहिये। धार्मिक

साहित्यका प्रचार, धर्मके निर्मल भावोंका विस्तार, धर्मके सूक्ष्म तत्त्वोंका अन्वेषण और प्रसार करनेके लिये प्रस्तुत हो जाना चाहिये। साथ ही धर्मका वास्तविक आचरण करके ऐसा चरित्रगत धर्मबल संग्रह करना चाहिये जिससे धर्मविरोधी हलचलमें ठोस बाधा पहुँचायी जा सके। सनातन-धर्म किसी दूसरे धर्मका विरोध नहीं करता। महाभारतमें कहा है—

धर्मं यो बाधते धर्मो न स धर्मः कुवर्त्म तत्।
अविरोधात्तु यो धर्मः स धर्मः सत्यविक्रम ॥
(वन० १३१। ११)

'हे सत्यविक्रम! जो धर्म दूसरे धर्मका विरोध करता है, वह तो कुधर्म है। जो दूसरेका विरोध नहीं करता, वही यथार्थ धर्म है। पता नहीं, ऐसे सार्वभौम धर्मके त्यागका प्रश्न ही कैसे उठता है? मनु महाराजके ये वाक्य स्मरण रखने चाहिये कि—

नामुत्र हि सहायार्थं पिता माता च तिष्ठतः।
न पुत्रदारा न ज्ञातिर्धर्मस्तिष्ठति केवलः ॥
मृतं शरीरमुत्सृज्य काष्ठलोष्ठसमं क्षितौ।
विमुखा बान्धवा यान्ति धर्मस्तमनुगच्छति ॥
तस्माद् धर्मं सहायार्थं नित्यं संचिनुयाच्छनैः।
धर्मेण हि सहायेन तमस्तरति दुस्तरम् ॥
(मनुस्मृति ४। २३९—२४२)

'परलोकमें सहायताके लिये माता, पिता, पुत्र, स्त्री और सम्बन्धी नहीं रहते। वहाँ एक धर्म ही काम आता है। मरे हुए शरीरको बन्धु-बान्धव काठ और मिट्टीके ढेलेके समान पृथ्वीपर पटककर घर चले आते हैं। एक धर्म ही उसके पीछे जाता है। अतएव परलोकमें सहायताके लिये नित्य शनैः-शनैः धर्मका संचय करना चाहिये। धर्मकी सहायतासे मनुष्य दुस्तर नरकसे भी तर जाता है।'

इसीलिये धर्मको सर्वश्रेष्ठ कहा जाता है—

'तस्माद् धर्मं परमं वदन्ति।'

वेदोक्त रात्रिसूक्त

(लेखक—पं० श्रीकृष्णचन्द्रजी मिश्र, बी० ए० (ऑनर्स), बी० एल०, डिप-इन-एड्०)

रात्र्यागमे प्रलीयन्ते·····प्रभवन्त्यहरागमे।'
(गीता ८। १८-१९)

रात और दिन, प्रलय और प्रभव, व्यक्त और अव्यक्त ये विश्वसृष्टिके द्वन्द्वात्मक पदार्थ हैं। रात्रिसूक्तके ऋषि उसी रात्रिकी अधिष्ठात्रीदेवी भुवनेश्वरी (दश महाविद्या)-की प्रार्थना करते हैं, जो उस रात्रिके आगमन-अवस्थिति-अवसानकी कारणस्वरूपा हैं। वही महाशक्ति पुनः दिनके आगमनपर प्रभवकी—सृष्टिकी अभिव्यक्तिका (अव्यक्तको व्यक्त करनेमें) भी कारण बनती है। इन्हीं भुवनेशानीको तान्त्रिक रात्रिसूक्तमें तामसी (तमिस्रा) शक्ति—'देवी तामसी तत्र वेधसा' या 'विष्णुकी योगनिद्रा' कहा गया है। ऋग्वेदीय* रात्रिसूक्तके ऋषिने प्राणियोंके कल्याणार्थ आठ अनुपम मणिरूप ऋचाएँ प्रदान की हैं। इनका 'देवी-माहात्म्य'पाठमें विनियोग आवश्यक है। रात्रिसूक्तके अर्थ-बोधके बिना 'देवीमाहात्म्य'का अर्थबोध अपूर्ण-सा रह जाता है। रात्रिसूक्त 'देवीमाहात्म्य-पाठ'का प्रवेश-द्वार या कुंजी है। यहाँ इस सूक्तके मन्त्रार्थके साथ शब्दार्थ और उसके पूर्व भावार्थदर्शनका भी प्रयास किया जाता है।

* वेदोंमें रात्रिसूक्त कई हैं—उपर्युक्त ऋक्संहिता १०। १२७। १-८के रात्रिसूक्तके अतिरिक्त वेदिकोंमें परमप्रसिद्ध अथर्ववेद काण्ड १९ के ४७ से ५० तकके सभी चारों सूक्त रात्रिसूक्त ही हैं। उसके कुछ मन्त्र वाजसनेयिसंहिता अ० ३४ तथा तैत्तिरीय ब्राह्मण २। ४। ६। १०में भी आये हैं। इस अथर्व १९। ४७। १, वाजस ३४। ३२ रात्रिसूक्तका 'आरात्रि पार्थिवरं रजः' मन्त्र इतना प्रसिद्ध हुआ कि सर्वत्र पूजाआरतीमें वही प्रयुक्त होता है। आरतीप्रथा (नीराजन) या लक्षवर्ती आरती (महानीराजन)के मूलमें भी यह वैदिक 'रात्रि-देवी'की आराधना ही हेतु दीखती है।

'राति—अभीष्टं ददाति इति रात्रिः' अर्थात् जो अभीष्ट प्रदान करे, इच्छित वस्तु दे, वह रात्रि है। वह इच्छित भिन्न-भिन्न व्यक्तियोंके लिये भिन्न-भिन्न भले ही हो, लेकिन रात्रि वही है, जो अभीष्टकी पूर्ति करे। ज्ञानियोंके लिये, योगियोंके लिये, मुमुक्षुओंके लिये वह अभीष्ट है—ज्ञान, शान्ति, जीवन्मुक्त या मोक्ष। कोई इसे विश्रान्ति कहते हैं और कोई आनन्द। उसीकी छायाको हम सांसारिक मनुष्य सुख कहते हैं, आराम कहते हैं। इसके विपरीत कष्टोंसे छुटकारा भी कहते हैं। ब्रह्मविद् उसे ही ब्रह्मोपलब्धि कहते हैं। शास्त्रोंने उसे ही मानव-जीवनका चरम ध्येय अथवा परम पुरुषार्थ कहा है।

रात्रिके और भी कई अर्थ हैं। सूर्यका प्रकाश पृथ्वीके जिस मार्गपर जितने समयतक नहीं पड़ता है, उतने समयतक उस भूभागपर रात्रिकी अवस्थिति रहती है। पृथ्वीके अधिकांश स्थानोंपर चौबीस घंटोंका अहोरात्र होता है। देवताओंका अहोरात्र इससे भिन्न है। देवोंका अहोरात्रसे ब्रह्माका अहोरात्र भिन्न है, बड़ा है। ब्रह्मासे विष्णुका बड़ा और विष्णुसे रुद्रका बड़ा। कालज्ञोंके कथनानुसार मानवका एक वर्ष देवताओंका एक अहोरात्र है। देवताओंका बारह लाख वर्ष ब्रह्माकी एक रात्रि होती है। ब्रह्माकी रात्रिको प्रलयकाल कहा जाता है। ब्रह्माका दिन कल्प कहलाता है और कल्पान्त ही प्रलयका आरम्भ है। प्रलयावस्थामें प्रकृति साम्यावस्थामें रहती है। सूर्य, चन्द्र, तारे, नक्षत्र, पृथ्वी कुछ भी नहीं रहते। जब पृथ्वी ही नहीं, तब इस पृथ्वीपरके पर्वत, नदी, नगर, वृक्ष, नर-वानर या कुछ भी कैसे रह सकता है। उस समय व्यक्त सृष्टिके सब व्यक्त पदार्थ सूक्ष्मातिसूक्ष्मरूपमें परिवर्तित होते-होते परमाणुसे भी सूक्ष्मरूप प्राप्त कर लेते हैं। उसे बीजरूप या कारणावस्था अथवा 'अम्भस्'रूप कहा जाता है। वह अवस्था इन्द्रियशून्य, अन्तःकरणशून्य, पञ्चमहाभूतशून्य, अहंकार तथा महत्तत्त्व-शून्य अवस्था है। अतएव उस अवस्थामें क्रियाशीलता नहीं है। वह अवस्था सुख-दुःखातीत है, अनुभूतिसे परेकी अवस्था है; न कोई शरीर, न कोई अङ्ग, न कोई कर्म, न कोई संकल्प; न कोई अनुभूति वह पूर्णतः निस्तरंग अवस्था है। प्रलयकी समाप्तिके पश्चात् 'अहराग'में पुनः ब्रह्माका प्रभात होनेपर फिर व्यक्त सृष्टिका प्रारम्भ हो जाता है। किंतु रात्रि पूर्ण विश्रान्तिकाल है।

'रात्रिसूक्तम्'की रात्रि ब्रह्मकी रात्रि है। इसे ब्रह्ममायात्मिका या ईश्वररात्रि कहा जाता है। जीवरात्रिमें जिस तरह सुषुप्तिमें प्रतिदिन जीवनके सब व्यवहार लुप्त हो जाते हैं, उसी तरह कल्पान्त या ईश्वररात्रिमें ईश्वरका सत्र व्यवहार (—सृष्टि-स्थिति-संहारसम्बन्धी कर्म) लुप्त हो जाते हैं, मानो ईश्वर भी योगनिद्रावस्थामें चले जाते हैं। जगी रहती है केवल महामाया या विष्णुमाया या देवीमाहात्म्य-प्रतिपादित देवी परमाशक्ति। रात्रिसूक्तके कवि कुशिक ऋषि उसी रात्रिदेवीको इस सूक्तद्वारा प्रसन्न करना चाहते हैं। इस सूक्तमें हम ऋषिको देवीके समक्ष ही पाते हैं।

मन्त्र-अन्वय-शब्दार्थ—

१–ॐ रात्री व्यख्यदायती पुरुत्रा देव्यक्षभिः।
विश्वा अधि श्रियोऽधित॥ १॥

ॐ (मङ्गलार्थ ब्रह्मस्मरण, प्रणवोच्चारण) **पुरुत्रा** (सर्वत्र, चतुर्दिक्) **अक्षभिः** (इन्द्रियोंसे, वस्तुओंका रूप-बोध करानेवाली इन्द्रियोंके द्वारा, महामायाके प्रसङ्गमें महत् आदि तत्त्वोंके द्वारा), **देवी** (द्योतनशीला, शक्ति, सर्वप्रकाशिकाशक्ति, सबके निजत्वकी आधारशक्ति), **आयती** (बार-बार आनेवाली), **रात्रि** (ब्रह्मकी मायारूपा रात्रिदेवी, रात्रिकी अधिष्ठात्री देवी, महामाया, परमा अम्बाशक्ति), **व्यख्यत्** (विख्यात है)। (अथ—अनन्तर), **विश्वाः** (सकल) **श्रियः**

(श्रीकल्याण, सम्पदाओंकी), सा (उन्होंने) अधि-अधित (धारण किया है ।)

२–ओर्वप्रा अमर्त्या निवतो देव्युद्वतः ज्योतिषा बाधते तमः ॥ २ ॥

अमर्त्या (नित्या), देवी (महामाया), उरु (विस्तीर्ण अन्तरिक्ष, सम्पूर्ण सृष्टिको), अप्राः (परिव्याप्त किया) (तथा—और) निवतः (नीच, निम्नस्थ, लता-तृणादि), उद्वतः (उच्च, वृक्षादि) । तमः (अन्धकार, अज्ञान), ज्योतिषा (ज्योतिद्वारा, ब्रह्मज्ञानद्वारा), बाधते (बाधित करती हैं, नष्ट करती हैं) ।

३–निरु स्वसारमस्कृतोषसं देव्यायती । अपेदु हासते तमः ॥ ३ ॥

आयती देवी (सर्वत्र व्यापिनी देवी माहामायाने), उषसं स्वसारं (बहन उषाको), निरु अस्कृत (प्रकट करती है, वैसी अवस्थामें), तमः (अन्धकार), अपेदु हासते (अपहृत होता है, हट जाता है) ।

४–सा नो अद्य यस्या वयं नि ते यामन्नविक्ष्महि । वृक्षेन वसतिं वयः ॥ ४ ॥

अद्य (आज अभी), नः (हमलोगोंके प्रति), सा (वह देवी, भुवनेश्वरी), प्रसीदतु (प्रसन्न हो), यस्याः (जिसकी), यामन् (प्रसादप्राप्तिसे) वयं (हमलोग), निअविक्ष्महि (स्व-स्वरूपमें अवस्थान करते हैं), (न—जैसे) वयः (पक्षीगण), वृक्षे (वृक्षपर, नीडाश्रयमें), वसतिं (रात्रि-निवास), कुर्वन्ति (करते हैं) ।

५–नि ग्रामासो अविक्षत नि पद्वन्तो नि पक्षिणः । नि श्येनासश्चिदर्थिनः ॥ ५ ॥

(आपमें) ग्रामासो (गाँववाले, पामर, असहाय) नि अविक्षत (सुखसे सोते हैं) । पद्वन्तः (पाँववाले, पशु, गो-अश्वादि), पक्षिणः (पंखवाले, पक्षी) तथा श्येनासः (बाज पक्षी), चित् अर्थिनः (कोई-कोई पथिकगण, प्रयोजनविशेषसे घरके बाहर रहनेवाले) नि अविक्षत (भरपूर सुखसे सोते हैं) ।

६–यावया वृक्यं वृकं यवय स्तेनमूर्म्ये । अथा नः सुतरा भव ॥ ६ ॥

ऊर्म्ये (तरंग, प्रवाह, प्रकट एवं व्यक्त होनेवाली), वृक्यं (नाना वासनारत व्याघ्र भी), वृकं (भेड़ियेके समान हिंसाकारी पापीको), यावया (हमसे दूर हटाओ, और) स्तेनम् (चोर, चित हरनेवाले काम प्रभृति दोषोंको), यवय (हमसे दूर हटाओ) । अथा (तदनन्तर), नः (हमें, हमारे लिये), सुतरां (अच्छी तरह तर जाने योग्य), भव (होओ) ।

७–उप मा पेपिशत्तमः कृष्णं व्यक्तमस्थित । उष ऋणेव यातयः ॥ ७ ॥

उष (हे उषादेवी), मा (मेरे चतुर्दिक्), पेपिशत् (सघन, गाढ़ा), व्यक्तं (मूर्तिमान्), कृष्णं (काला), तमः (अन्धकार, अज्ञान), उपस्थित (आकर खड़ा है, उसे), ऋण (कर्ज), इव (तरह), यातयः (दूर करो) ।

८–उप ते गा इवाकरं वृणीष्व दुहितर्दिवः । रात्रि स्तोमं न जिग्युषे ॥ ८ ॥

रात्रि (हे देवि), ते (आपको), गा (दूध देनेवाली गायकी), इव (भाँति, तरह), आकरं (स्तुति-जपादिद्वारा) (प्रसन्न करता हूँ) दुहितः दिव (हे परमेश्वरकी कन्या), जिग्युषे आपकी कृपासे कामादि शत्रुओंको जय करूँगा, जीतूँगा) । (आप) नः (हमारे), स्तोमं (स्तोत्र), (और हविषको भी), वृणीष्व (ग्रहण करें) ।

हम पहले कह आये हैं कि वैदिक और तान्त्रिक रात्रिसूक्त बहुतसे हैं । ऋग्विधान, अथर्वविधान तथा अथर्ववेद परिशिष्ट ४ । ३ । १ से ६ । ६ तकमें इनका अतुलित माहात्म्य एवं प्रयोग—विनियोग-विधान निर्दिष्ट है ।

राष्ट्ररक्षार्थ रात्रिदेवीकी भारतमें पहले अत्यन्त श्रद्धासे आराधना होती थी। राजागण विधिपूर्वक राष्ट्रके पाप-ताप, महामारी-शान्ति, अकाल शत्रुरोगभयादिके निवारणार्थ एवं राष्ट्ररक्षा-पालनार्थ इस प्रक्रियाका भारतमें प्रयोग करते थे। इस प्रसङ्गमें अथर्वपरिशिष्टका रात्रिसूक्तविधान अवश्य द्रष्टव्य है। वहाँ इसमें (खण्ड १ से ६ तक) रात्रिदेवीकी पूजापर प्रायः ५० श्लोक हैं और कहा गया है—

अथ पिष्टमयीं रात्रिं चतुर्भिर्दीपकैः सह।
अर्चितं गन्धमाल्येन स्थापयेत्तस्य चाग्रतः॥
नमस्कृत्वा ततो रात्रिमर्चयित्वा यथाविधि।
धूपेन चान्नपानेन स्तोत्रेण च समर्चयेत्॥

पाहि मां सततं देवि सराष्ट्रं ससुहृज्जनम्।
उषसे नः प्रयच्छस्व शान्तिं च कुरु मे सदा॥
ये त्वां देवि प्रपद्यन्ते न तेषां विद्यते भयम्।
रात्रिं प्रपद्ये जननीं सर्वभूतनिषेविनीम्॥
भद्रां भगवतीं कृष्णां विश्वस्य जगतो निशाम्।
संवेशनीं संयमनीं ग्रहनक्षत्रमालिनीम्।
प्रपन्नोऽहं शिवां रात्रिं भद्रे पारमशीमहि॥
यां सदा सर्वभूतानि स्थावराणि चराणि च।
सायं प्रातर्नमस्यन्ति सा मां रात्र्यभिरक्षतु॥

इनका भावार्थ प्रायः वही है, जो उपर्युक्त सूक्तके अर्थमें किया गया है। श्लोकरूपमें प्रार्थनाके ये मन्त्र सरल ही हैं।

मूर्तिपूजा विश्व-व्यापक

(लेखक—पं० श्रीदीनानाथजी शास्त्री, सारस्वत, विद्यावाचस्पति, विद्याभूषण)

ध्यान तथा पूजा चेतनकी होती है, जडकी नहीं। तथापि पूजाके लिये जडको माध्यम बनाना इस जड संसारमें एक प्रकारसे अनिवार्य हो जाता है। जडमें ही चेतन व्यापक होता है, चेतनमें चेतन नहीं होता; क्योंकि जडको माध्यम बनाये बिना चेतनकी पूजा कैसे सम्भव हो सकती है। निराकार आत्माकी पूजा कैसे सम्भव है? अङ्गीकी पूजा जड-अङ्गद्वारा ही तो होती है।

हम सम्मानार्थ किसी महापुरुषको पुष्पमाला पहनाते हैं। यह माला उस आत्मस्वरूप महापुरुषको निराकारताके कारण पहनायी नहीं जा सकती, किंतु उस अङ्गीके किसी अङ्गके द्वारा ही पहनायी जा सकती है। अतः हम उसके गलेमें ही वह माला डालेंगे; परंतु गला तो हड्डी, मांस, लहू एवं चमड़ेका है। तब क्या हम जड चमड़े आदिकी तथा हड्डीकी पूजा करते हैं? नहीं-नहीं; हम जडके माध्यमसे उसके आत्माकी पूजा करते हैं। आत्मा होता है—अङ्गी, निराकार। उस अङ्गीकी पूजा सम्भव ही नहीं। तब हम उसके जड अङ्गके माध्यमद्वारा ही यह पूजा सम्पन्न करते हैं।

उद्देश्य तो हमारा चेतनकी पूजामें होता है, पर हम जड माध्यमद्वारा वह पूजा तथा सम्मान, और किसी पदार्थका समर्पण कर चेतनका करते हैं। इससे सिद्ध होता है कि सर्वव्यापक एवं सर्वज्ञ परमात्माको यह ज्ञात है कि पूजक जडकी पूजा नहीं कर रहा है, किंतु मुझ चेतनकी पूजा अगत्या जड-माध्यमद्वारा कर रहा है। केवल माध्यम जड है; क्योंकि भगवान्‌की पूजाके लिये हम जड संसारी जीवोंका माध्यम अनिवार्यरूपसे संसार ही होता है और वह संसार बाह्यदृष्टिसे जड ही होता है। वेदके पृथिवी-सूक्तमें एक मन्त्र इस प्रकार आया है—

शिला भूमिरश्मा पांसुः सा भूमिः संधृता धृता।
तस्यै हिरण्यवक्षसे पृथिव्या अकरं नमः।
(अथर्व० १२। १। २६)

इस मन्त्रमें पृथ्वीको शिला एवं प्रस्तराद्यात्मक कहा गया है तथा उसे नमस्कार किया गया है। तब क्या हम जड पत्थरकी पूजा करते हैं? कभी-नहीं। पत्थर-ईंट आदि तो माध्यम हैं, हमारी आराध्या तो पृथ्वी है,—पृथिव्यभिमानी देवता, जिसे हम 'भारतमाता'के नामसे पुकारते हैं, हम उसी चित्-शक्तिकी पूजा करते हैं—जड-माध्यमद्वारा।

हम स्वयं जड हैं, सारा संसार जड है, परंतु पूजा उसमें व्यापक है, 'स ओतः प्रोतश्च विभुः प्रजासु' (यजु० माध्यं० सं० ३२ । ८) हमारे पूजा करनेवाले हाथ जड़ हैं, स्तुतिकर्त्ता हमारा मुख एवं जिह्वा भी जड हैं, ध्यानकर्त्ता हमारा मन भी जड है । उस जड़के सिवा इस जड संसारमें काम ही नहीं हो सकता ।

उपासकलोग—'**नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शंकराय च मयस्कराय च** (यजु० माध्यं० १६।४१)' इस प्रकार अपनी संध्याके अन्तमें भगवान् शंकरको नमस्कार करते हैं । पर सामने कभी कोई माध्यमरूपसे जड दीवार होती है या जड प्रकाश या जड आकाश होता है । तो क्या हमारे नमस्कारका लक्ष्य वह जड दीवार या जड प्रकाश अथवा आकाश होता है ? कभी-नहीं, किंतु हमारे नमस्कारका लक्ष्य वह चित्-शक्ति महादेव ही होते हैं । वे सामनेकी दीवार आदि तो नमस्कारके माध्यम ही होते हैं, चरम लक्ष्य नहीं ।

प्रतिमाका अर्थ उपमा भी

कहा जाता है—'**न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः** (यजु०ः माध्यं० सं० ३२। ३)। उसकी कोई प्रतिमा (मूर्ति) नहीं, जिसका नाम बड़े यशवाला है । तब आप मूर्तिपूजक होते हुए भी अपने-आपको वैदिक कहनेका दम्भ कैसे कर सकते हैं ?' इसपर यह जानना चाहिये कि यहाँ इस मन्त्रमें 'प्रतिमा'का अर्थ 'मूर्ति' नहीं है, किंतु 'उपमा' है । अर्थात् उस भगवान्‌की समानताका (बराबरीका) कोई नहीं है । 'वे 'अनुपम' हैं' यही यहाँ तात्पर्य है । 'नैषधचरित' महाकाव्यके '**न तन्मुखस्य प्रतिमा चराचरे**' (१ । २३) पद्यमें भी प्रतिमाका उपमा ही अर्थ है—अन्यथा क्या आप यह समझेंगे कि नलके मुखकी मूर्ति इस संसारमें नहीं है ? नहीं, ऐसा कभी नहीं है; क्योंकि उसी महाकाव्यमें नलके मुखकी मूर्तिके निर्माणका वर्णन भी उपलब्ध होता है । देखिये—'**इति तस्य सा कारुवरेण लेखितं नलस्य च स्वस्य च सख्यमीक्षते**' (१ । ३८) ।

तभी तो उक्त पूर्व पद्यके अनुवादभूत उसके आगेके पद्यमें आया है—'**तदाननस्योपमितौ दरिद्रता**' (१ । २४) यहाँ पूर्व पद्यमें 'प्रतिमा' पदका पर्यायवाचक शब्द 'उपमिति' आया है । 'उपमितिः'–उपमा ।

इस प्रकार उक्त मन्त्रके 'प्रतिमा' शब्दका अर्थ भी 'उपमा' है जैसे कि—'भगवान्‌की कोई उपमा नहीं है । वह 'अनुपम' है । इसी प्रकार रघुवंश (२ । ४९) आदिमें भी प्रतिमाका अर्थ उपमा है । भगवान् श्रीशंकराचार्यने भी उक्त वैदिक मन्त्रका ऐसा ही अर्थ किया है । यहाँ 'प्रतिमा'का 'मूर्ति' अर्थ नहीं किया—

'**तस्य—तस्यैव ईश्वरस्य एतादृश-द्वितीयाभावात् प्रतिमा नास्ति** (श्वेताश्वतरोपनिषद् भाष्य ४ । १९) ब्रह्मसूत्रभाष्यमें भी आचार्यने लिखा है—'**न तस्य प्रतिमा अस्ति' इति च ब्रह्मणोऽनुपमानत्वं दर्शयति**' (२ । ३ । ७ ।)

आक्षेप्ताओंके नेता स्वामी दयानन्दजीने भी उक्त मन्त्रका ऐसा ही अर्थ रखा है—देखिये—

प्रश्न—'**वेदेषु प्रतिमा शब्दोऽस्ति न वा ?**' वेदोंमें 'प्रतिमा' शब्द है या नहीं ?'

उत्तर—अस्ति (वेदोंमें 'प्रतिमा' शब्द तो है ।)

प्रश्न—**पुनः किमर्थो निषेधः** (फिर आप वेदमें मूर्ति-पूजाका खण्डन कैसे करते हैं ?)

उत्तर—**प्रतिमार्थे न वेदे मूर्तयो गृह्यन्ते ? किं तर्हि ? परिमाणार्थो परिगृह्यते** (वेदमें 'प्रतिमा' शब्दका अर्थ मूर्ति नहीं, किंतु उपमा, तुल्यता आदि अर्थ लिया जाता) । सो यह ठीक भी है; क्योंकि उसमें हेतुगर्भित विशेषण दिया गया है—'**यस्य नाम महद्यशः**' उस परमात्माका नाम बड़े यशवाला है । सो जो यशस्वी

हो उसकी उपमारहितता (अनुपमता) तो होती ही है। पर उसकी मूर्तिका निषेध नहीं हुआ करता। आप बड़े यशवाले किसीको भी देखिये—उसकी मूर्ति अवश्य मिलेगी। उसकी मूर्तिका अभाव नहीं हो।

अब स्पष्ट हो गया कि मूर्ति व प्रतिमाके माध्यमसे हम उसी इष्ट चित्-शक्तिका ध्यान व पूजन करते हैं। तभी वादि-प्रतिवादिमान्य योगदर्शन में लिखा है—**यथाभिमतध्यानाद् वा** (समाधिपाद सूत्र ३९) इस सूत्रके योगवार्तिकमें आया है—**'यदेव अभिमतं हरिहर-मूर्त्यादिकं, तदेव आदौ ध्यायेत्'**। यहाँ हरि-हर आदि मूर्तियोंमें ध्यान बताया गया है। यही अपने इष्टदेवमें इष्ट होता है।

आर्यसमाजके प्रसिद्ध 'काशीशास्त्रार्थ'में आया है—" जैसे **'मनो ब्रह्म' 'आदित्यं ब्रह्म'** इति, उपासीत इत्यादि वचन वेदोंमें देखनेमें आते हैं, वैसे **'पाषाणादि ब्रह्म' 'इत्युपासीत'** (पत्थर आदिकी पूजा करो) इत्यादि वचन वेदादिमें नहीं दीख पड़ते। फिर वेदमें क्योंकर पत्थर आदिकी पूजा-नमस्कार आदि नहीं कही गयी ?" जब स्वामीजीने वेदमें मन और सूर्य आदिकी पूजा बतायी है, तब पाषाणादिकी पूजा भी वैदिक सिद्ध हो गयी, क्योंकि सूर्य-चन्द्रादिमें भी पत्थर हैं। तब माध्यमरूपसे उसमें भी पाषाणादिकी पूजा स्वतः सिद्ध हो गयी। मन भी एक हड्डी है। 'पृथ्वीसूक्त'में पत्थर आदिरूप पृथ्वीको नमस्कार हम पहले बता चुके हैं।

वस्तुतः उक्त वचनोंमें वेदोंमें मन क्या सूर्यके माध्यमसे सूर्यकी पूजा आती ही है। देखिये—

'उद्यते नमः, उदायते नमः, उदिताय नमः' (अथर्व० १७। १। २२) **'अस्तंयते, नमो अस्तमेष्यते, नमो स्तमिताय नमः'** (१७। १। २३) यहाँ सूर्यको उदय होते तथा अस्त होनेके समय नमस्कार किया गया है। **'सो तन्मध्यपतितस्तद्ग्रहणेन गृह्यते'** इस न्यायसे सूर्यान्तर्गत पत्थर आदि भी माध्यमरूपसे गृहीत हो जाते हैं।

तब स्पष्ट हुआ कि जड़ ही जड़ होता है, क्योंकि हमारी जड़ संसार है और वह संसार भी जड़ है। हम जड़के माध्यमसे उस चित्-शक्तिकी पूजा सम्पन्न करते हैं। जो सम्प्रदाय मूर्तिपूजा नहीं मानते, केवल चेतनोंकी ही पूजा मानते हैं, वे बतावें—वे चेतनोंकी पूजा व सम्मान कहाँ करते हैं ? वस्तुतः वे भी चेतनोंके किसी जड़ अङ्गकी पूजा करते हैं। इस प्रकार कोई भी सम्प्रदाय मूर्तिपूजासे मुक्त नहीं हो सकता। अतः सनातन धर्ममें मूर्तिपूजा बहुत सोच-समझकर रखी गयी है। अतः कोई भी सम्प्रदाय इस विश्वव्यापक मूर्तिपूजाके सिद्धान्तसे हट वा मुकर नहीं सकता।

आशा है 'कल्याण'पाठकोंने इसमें रहस्य ज्ञात कर लिया होगा कि वेदोंमें जो सूर्य आदि देवोंकी पूजा आयी है, उसका उद्देश्यचिच्छक्ति परमेश्वरकी ही पूजा स्पष्ट है—देवी-देव सब भगवान्‌की चित्-शक्तिकी पूजाके माध्यम हैं। उन्हींसे भगवान्‌की पूजा सम्पन्न होती है।

विजयिनी मूर्ति-पूजा

दिग्विजयके प्रसङ्गमें स्वामी दयानन्द सरस्वती और डुमराँवके राजगुरु दुर्गादत्त परमहंसजीका मूर्ति-मान्यता पर सौहार्दपूर्ण रोचक शास्त्रार्थ हुआ था। उस श्रेष्ठ राजसभामें परमहंसजी शिवजीकी मूर्ति लेते आये थे। परमहंसजीने कहा—*किं वचनीयमस्ति ?* स्वामीजीने मूर्तिकी ओर कटाक्ष करते हुए कहा—वेदमें मूर्ति-पूजा नहीं है, मन्त्र भाग ही वेद है, ब्राह्मणभाग नहीं। भारतमें प्राचीन कालमें मूर्ति-पूजा नहीं थी। मैं मूर्ति-पूजा नहीं मानता। मूर्तिके बिना क्या हर्ज है ?' परमहंसजीने कहा—यदि आप मूर्ति-पूजा नहीं मानते तो मूर्तिसे अलग होकर शास्त्रार्थ कीजिये। क्या आप मूर्ति (देह) से अलग होकर शास्त्रार्थ कर सकते हैं। ईश्वर सर्वव्यापी है। वह साकार वस्तुमें भी है। मन्त्र और ब्राह्मण दोनों वेद हैं। भारतमें और विश्वमें अनादि कालसे मूर्ति-पूजा होती आयी है। परमहंसजीने सप्रमाण उक्तियों और युक्तियोंसे मूर्ति-पूजा सिद्ध कर दी। स्वामीजीने परमहंसजीकी बड़ी प्रशंसा की।

—पं० दुर्गादत्त परमहंसजीके 'जीवन-चरित'से

नर्मदा-प्रदक्षिणा-माहात्म्य

(२)

(लेखक—पूज्यपाद श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारीजी महाराज)

[गताङ्क ४, पृ०-सं० ११०से आगे]

छप्पय—

मातु नर्मदे ! भूमण्डल पै जब तुम आई।
सुर, मुनि, नर अरु पितर सबनिके मन अति भाई॥
छाटो सबके पाप पुन्यको स्रोत बहाओ।
गुन अवगुन नहिं लखो दयामय मातु कहाओ॥
निकरीं शंकर जटनितें, गिरि, वन, द्रुम पावन करे।
दरस परस पय पानतें, अगनित नर नारी तरे॥

परिक्रमा-मार्गके तीर्थ

नर्मदाजीके किनारे लाखों-करोड़ों तीर्थ हैं। यहाँ अत्यन्त संक्षेपमें हम तीर्थोंका वर्णन करते हैं; जैसे— अमरकण्टकसे परिक्रमा उठायी तो अमरकण्टकमें ही बीसों तीर्थ हैं, उन्हें करके आगे करागङ्गा, कण्वा, तुडार, सिवनी, चिकरार, मचरार आदि नदियोंके सङ्गम हैं। मचरारमें ऋणमुक्तेश्वर शिव हैं, आगे देवगाँवमें जमदग्नीश्वर शिव हैं। आगे मधुवटीमें मार्कण्डेश्वर हैं। आगे जबलपुर जिलेमें त्रिशूलघाट, वराहतीर्थ, इन्द्रेश्वर, पिप्पलेश्वर, धुआँधार, रामकुण्ड, लुकेश्वर हैं। फिर नरसिंहपुर जिलेमें बुधघाटपर बुधेश्वर, जबरेश्वर, सगुन-घाटपर सङ्गमेश्वर हैं। फिर हुसंगाबाद जिलेमें सांडियामें शाण्डिल्याश्रम है। टिघरियामें गोगणेश्वर शिव हैं। इन्दना नदीके संगमपर चतुर्मुखी महादेव हैं। हंडियामें रिद्धनाथ और पुनघाटमें गौतमेश्वर हैं। फिर नेमाड़ जिलेमें ओंकारेश्वरमें अमलेश्वर ज्योतिर्लिङ्ग है। काकरियामें नर्मदाके बीचमें गङ्गेश्वर हैं। फिर इन्दौर जिलेमें माण्डव्याश्रममें विशोकेश्वर शिव हैं, फिर बड़तानी जिलेमें मोहिपुरामें सहस्रयज्ञाख्य तीर्थ है। दत्तवाड़ामें कपाल-मोचनतीर्थ है। हिरनकालमें, कहते हैं, हिरण्याक्षने नर्मदातटपर तप किया था। फिर खानदेशमें पेंडराके सामने हापेश्वर, राजपिप्पला गुजरामें शूलपाणीश्वर शिव हैं, चादरियामें वैद्यनाथ शिव हैं, और जीगोरमें ब्रह्मेश्वर, कुम्भेश्वरके मन्दिर हैं। कटोरामें हनुमन्तेश्वर, पोयचामें पूतिकेश्वर, संडमें नागेश्वर, शुकेश्वर और उत्तेरीमें मार्कण्डेश्वर हैं। कोटिनारमें कोटेश्वर, साँसोदरामें मुकुटेश्वर, कांदलोलमें स्कन्देश्वर, वराक्षामें वाल्मीकेश्वर, आसामें कवालेश्वर, इन्दौरघाटमें इन्द्रेश्वर और वेरुग्रामके सामने नारेश्वर है। मालौदमें सिद्धेश्वर, तरसालीमें तापेश्वर, सिद्धेश्वर, वरुणेश्वर, पोरामें चाराशरेश्वर, लाड़वामें कुसुमेश्वर, कलक-लेश्वरमें मधुमतीके सङ्गममें सङ्गमेश्वर, उचडियामें मोक्षतीर्थ, ग्वालीमें गोवेश्वर, नौगवाँमें नाग और सांवाहितीर्थ हैं। ये सब राजापिप्पलामें हैं। आगे गुजरातका भड़ौच जिला है, उसमें अंदाड़ामें सिद्धेश्वर, अंकलेश्वरमें मांडवेश्वर, सहजोरामें सिद्धरुद्रेश्वर, मांटियरमें वैद्यनाथ तीर्थ और सूर्यकुण्ड हैं। मोठियामें नर्मदेश्वर, सीरामें उत्तरेश्वर, हाँसोटमें वासवेश्वर, वासनोलीमें कोटेश्वर और कतपुरमें अलिकेश्वर हैं। यहींसे जहाजमें पार होकर उत्तरतटपर उतरकर विमलेश्वरके पास रेवासंगममें दक्षिणतटकी परिक्रमा समाप्त होती है। फिर यहाँसे उत्तरतटकी परिक्रमा आरम्भ होती है। भड़ौच जिलेमें लखीगाममें लुण्ठेश्वर, भूतनाथ, अमलेटामें चन्द्रमौलेश्वर, सुआमें सोमेश्वर, कोल्यादमें एरंडी नदीके संगमपर कपिलेश्वर हैं। वैंगड़ीमें बैजनाथ, कलादरामें कपालेश्वर, कुजामें मार्कण्डेश्वर, कासवामें कंथेश्वर, एकसामें अप्सरेश्वर, समनीमें मुंडेश्वर, टिंबीसुवर्णमें विदेश्वर, भड़ौचमें बहुतसे तीर्थ हैं, फिर झाड़ेश्वर, तवरामें कपिलेश्वर, शुक्लतीर्थमें हुंकारेश्वर, मङ्गलेश्वर, निकोटामें लिंकेश्वर, शीनौर वैष्णव तीर्थ, नाँदमें नंदादेवी—ये भड़ौच जिलेके तीर्थ हैं।

बड़ौदा जिलेके सोमजदिल्वालामें सोमतीर्थ कर्कटेश्वर कीरलको नर्मदाकी गुप्तकाशी कहते हैं।

सायरमें सागरेश्वर, कपर्दीश्वर, फतेपुरमें नर्मदेश्वर, कोहिनेश्वर, कोठियामें चन्द्रेश्वर, रणापुरामें कंबुकेश्वर, दीवेरमें कपिलेश्वर, मालसर, अङ्गारेश्वर, पाण्डुतीर्थ, कंटोईमें कोटेश्वर, आङ्गिरस-तीर्थ, सीनोरमें चक्र और रोहिणी-तीर्थ, दावापुरमें धनेश्वर, कंजेटामें भरतेश्वर, करंजेश्वर, अम्बालीमें अम्बिकेश्वर, अनुसुइया माईमें एरंडीसङ्गमपर सुवर्णशिला, झाँझरमें जनकेश्वर और मन्मथेश्वर—ये बड़ौदा जिलेके तीर्थ हैं।

इन्दौर जिलेके धर्मरायमें धर्मेश्वर, अकलबाड़ामें वागीश्वर, सेमरदामें दीप्तिकेश्वर, बड़ा बरदामें वराहेश्वर, ऋद्धेश्वरमें आँदतीश्वर, हतनोरामें दारुकेश्वर, माड्वगढ़में नीलकण्ठ हैं। इसी प्रकार धार जिलेके ये तीर्थ—खलघाटमें कपिलेश्वर और महेश्वरमें धर्मात्मा अहल्याबाईकी समाधि हैं। आगे इन्दौर जिला है। इन्दौर जिलेके बड़वाहामें नागेश्वर-कुण्ड, धार जिलेमें चौबीस अवतारके पास ओंकारेश्वर हैं। धाधरीमें नर्मदाका सबसे बड़ा प्रपात है। फिर इन्दौर जिलेके नेमावरमें सिद्धनाथ, सिद्धेश्वर हैं। फिर भोपाल जिलेके मर्दानपुरमें शिवतीर्थ, आँवरी घाटपर भीमकुण्ड, कोऊधानघाटमें राममन्दिर तथा बोरासमें बहुत शिवमन्दिर, अन्धौरामें जनकेश्वर, शुक्लघाटमें शुक्लेश्वर—ये भोपाल जिलेके तीर्थ हैं। अब आया नरसिंहपुर जिला। इसके बिलधारीमें राजा बलिकी तपस्थली है। अण्डियामें मकथेश्वर, नर्मदाहरणीसंगमपर सङ्गमेश्वर और हरणेश्वर मन्दिर है। ये नरसिंहपुर जिलेके तीर्थ हुए। अब आया जबलपुर जिला। जबलपुरके सुनाचरमें सहस्रावर्त-तीर्थ, गोरामें ब्रह्मोदतीर्थ, मालकछमें शिवतीर्थ, जलेरीमें लुकेश्वर, भेड़ाघाटमें धूँआधार संगमरमरकी चट्टानें, तिलवाड़ामें मुकुटक्षेत्र, ग्वारीघाटमें तिलमाण्डेश्वर, फिर नन्दकेश्वर हैं। जबलपुरके पश्चात् मण्डला जिला आता है जहाँ सहस्र धारा है, मण्डलामें भी बहुत मन्दिर हैं, लुटगाँवमें लछमन मण्डवातीर्थ है। इसके पश्चात् रीवाँ जिला आता है। भीमकुण्डीमें वाणगङ्गासंगम है, फिर कपिल-धाराका जलप्रपात है। फिर कोटितीर्थ और अमर-कण्टकमें नर्मदापरिक्रमा समाप्त हो जाती है।

हमने यहाँ नर्मदाके दक्षिण और उत्तरतटके प्रसिद्ध-प्रसिद्ध तीर्थोंके ही नाम गिनाये हैं। वस्तुतः उसकी पूरी परिक्रमामें लाखों तीर्थ आ जाते हैं। सभीका दर्शन सम्भव नहीं। कुछके दर्शन होते हैं, कुछको हाथ जोड़ देते हैं। जो भाग्यशाली होते हैं, वे ही नर्मदाजीकी विधिवत् पैदल-परिक्रमा करते हैं। बहुतसे लोग तो अनेक बार परिक्रमा करते हैं। कुछ सदा परिक्रमा ही करते रहते हैं। नर्मदाकी परिक्रमाका बहुत माहात्म्य है। (समाप्त)

नर्मदाके नमस्कारसे विष एवं सर्प-भयका शमन

नर्मदायै नमः प्रातर्नर्मदायै नमो निशि।
नमोऽस्तु नर्मदे तुभ्यं त्राहि मां विषसर्पतः॥

(श्रीविष्णुपुराण ३।३।१३)

'नर्मदाको प्रातःकाल नमस्कार है और रात्रिकालमें भी नर्मदाको नमस्कार है। हे नर्मदे! तुमको बारंबार नमस्कार है, तुम मेरी विष और सर्पसे रक्षा करो।' इस मन्त्रका उच्चारण करते हुए दिन अथवा रात्रिमें किसी समय भी अन्धकारमें जानेसे सर्प नहीं काटता तथा इस मन्त्रका स्मरण करनेसे अनजानेमें विष-मिश्रित भोजन भी घातक नहीं होता।'

परमार्थकी पगडण्डियाँ

(नित्यलीलालीन परमश्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके अमृत-वचन)

जिस कालमें मनुष्यका मन त्याग एवं प्रेमसे पूर्ण, पवित्र, भगवत्-सम्बन्धयुक्त सात्त्विक-भावोंसे भरा होता है, वही काल उसकी उन्नतिका होता है; क्योंकि मानसिक भावोंके अनुसार ही कार्य होते हैं और उन कार्योंका अच्छा-बुरा परिणाम ही हमारी उन्नति-अवनतिका स्वरूप होता है। जब हमारे मनमें काम, क्रोध, लोभ, असत्य, वैर, हिंसा, द्वेष, दम्भ, द्रोह, विषाद, संताप, ईर्ष्या, मत्सर, अभिमान, दर्प, ममत्व, अहंकार आदि भरे हैं और दिनोंदिन बढ़ रहे हैं, तब हमारे द्वारा सत्कार्योंका होना और उनके फलस्वरूप अभ्युदय और विकासकी प्राप्ति होना कैसे सम्भव है! जैसा आज हमारा मन है, वैसा ही जगत् हमारे सामने आनेवाला है। आजके हमारे मनमें विध्वंस, विनाश और अवनतिके विचार ही बढ़ रहे हैं और सबसे बढ़कर बात तो यह है कि अपनेको प्रगतिशील माननेवालोंको इन विनाशी विचारोंमें ही प्रगति और विकास दीख रहा है। भगवान्‌ने श्रीमद्भगवद्गीतामें कहा है—

अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसावृता।
सर्वार्थान् विपरीतांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी॥ (१८। ३२)

'बुद्धि जब तमोगुणसे ढक जाती है, तब वह अधर्मको धर्म मानती है, उसकी फिर सभी अर्थोंमें विपरीत मान्यता हो जाती है।' फिर हानिमें लाभ, अवनतिमें उन्नति, विनाशमें विकास, पतनमें उत्थान और लघुत्वमें महत्त्व दीखने लगता है। यह तामसी बुद्धिका स्वरूप है और तमोगुणका फल है 'अधो गच्छन्ति तामसाः' के अनुसार तामस प्राणी अधोगतिको प्राप्त होते हैं (—गीता १४। १८)।

हाँ, इस दुःसमयमें भी भगवान्‌का आश्रय लेकर उनका भजन करनेवाले पुरुष न तो दैवीगुणोंसे वञ्चित होंगे और न उनका अधःपात ही होगा, चाहे संसारमें उनकी भारी अवज्ञा ही क्यों न हो जाय। अतएव मेरी तो प्रार्थना है कि हम सबको भगवद्भजनमें संलग्न हो जाना चाहिये।

भगवान्‌के लिये व्याकुलताका अभाव

मनुष्य धनके लिये रोता है, स्त्री और पुत्रके लिये रोता है, सगे-सम्बन्धियोंके लिये रोता है, किंतु भगवान्‌के लिये उसकी आँखोंसे आँसू नहीं निकलते। उनका महत्त्व इन गयी-बीती वस्तुओंसे भी कम मान रक्खा गया है। धन आता है और नष्ट हो जाता है। स्वामी, स्त्री-पुत्र, सगे-सम्बन्धी सब नाशवान् हैं, सभीको एक दिन इस जगत्‌से नाता तोड़कर चल देना है। और तो और, अपना यह शरीर भी, जिसका मोह हमें सबसे अधिक रहता है, हमें छोड़कर चल देता है या हमीं इसे विवश होकर छोड़ देते हैं। जब शरीर भी सदा साथ देनेवाला नहीं, तब जगत्‌के अन्य नश्वर पदार्थों, सम्बन्धों और व्यक्तियोंके लिये क्यों रोया-धोया जाय? भगवान् नित्य हैं, अजर-अमर हैं, सौन्दर्य-माधुर्य, ऐश्वर्य, सुख, आनन्द और ज्ञानके भण्डार हैं। हम जिन-जिन सुखोंकी कामनाके लिये, जिस शान्ति और सुविधाके लिये बाहर भटकते हैं, वे सभी अक्षयरूपसे भगवान्‌में नित्य और पूर्णरूपसे विराजमान हैं। वे ही भगवान् हमारे आत्मा हैं, प्राणोंके प्राण हैं, परम प्रियतम हैं, किंतु उनके लिये हमारे मनमें कभी दर्द नहीं उठता। हमारी दशा उन पागलोंकी-सी है, जो अपने सच्चे सुहृदोंको ही पराया समझते हैं और परायोंको अपना मानते हैं।

भगवान्‌की मोहिनी वंशी बज रही है, वे हमारा नाम ले-लेकर पुकारते हैं—'मामेकं शरणं व्रज।' पर हम नहीं सुनते। जहाँ हमें सब कुछ छोड़कर प्राणाधारसे मिलनेके लिये उत्सुक होकर दौड़ पड़ना चाहिये, न जाने कबसे कितने युगोंके बिछुड़े हुए प्राणेशको हृदयसे लगानेके लिये व्याकुल हो जाना

चाहिये और उनके चरणोंमें जाकर लोट जाना चाहिये, वहाँ हम उनकी पुकारतक नहीं सुनते। उधरसे मुँह मोड़कर विपरीत दिशाकी ओर भागे जा रहे हैं। आनन्द और तृप्तिके एकमात्र भण्डार परमात्मा-रूपी जलाशयसे सुधारससागरसे दूर हटकर मरुकी मरीचिकामें प्यास बुझानेको दौड़ रहे हैं। फिर हमें वहाँ केवल जलन, केवल दुःख और केवल नैराश्य ही हाथ लगे तो क्या आश्चर्य है।

यदि भगवान् हमें कर्मोंका पूरा-पूरा फल भुगताने लगें तो *'नहिं निस्तार कल्प सत कोरी'*—करोड़ों कल्पोंतक उद्धार न हो, किंतु वे तो *'दीनबंधु अति मृदुल सुभाऊ'* हैं जो हमारे अवगुण नहीं देखते। उनकी जीवोंपर अकारण करुणा है, अतएव *'कबहुँक करि करुना नर देही'*—वे कभी दया करके ही हमें मानवशरीर, भारतवर्षमें जन्म और सनातनधर्मकी सेवाका शुभ अवसर प्रदान करते हैं। उनकी इस अपार दयाको भुलाकर यह मानना कि यह सब केवल हमें अपने अच्छे कर्मोंके प्रभावसे मिल गया है, इसमें भगवान्‌का हाथ नहीं है, मिथ्या अहंकारका परिचय देना है।

विश्वास नहीं है, परंतु सत्य यह है कि विश्वम्भर ही विश्वका भरण-पोषण करते हैं। वे भक्तोंका ही नहीं, प्राणिमात्रका योग-क्षेम वहन कर रहे हैं। भक्त केवल उन्हींपर निर्भर रहता है, अतः उसको इस बातका प्रत्यक्ष अनुभव होता है। अभक्त सदा अपने अहङ्कारको ही सामने रखता है।

क्या हम अपने परिश्रमसे ही कमाते-खाते हैं? परिश्रमके लिये जिसने शरीर दिया, साधन दिया, नीरोग रक्खा, नौकरी लगवायी और छिपे-छिपे न जाने और कितने उपकार किये, उस भगवान्‌का कोई स्थान नहीं है? हा अभाग्य! तू मनुष्यका पीछा कब छोड़ेगा? कब इसे पद-पदपर भगवान्‌की कृपाका अनुभव करनेकी सुबुद्धि होगी?

'केवल भगवान् ही सबके सच्चे सुहृद् हैं'—ऐसा दृढ़ विश्वास रखकर उनसे प्रेम बढ़ाते रहें, तभी कल्याण है।

शीघ्र भगवत्प्राप्ति कैसे हो?

भगवान्‌की अकारण कृपापर विश्वास और उनके पानेकी एकान्त लालसा—ये ही दो ऐसे साधन हैं, जिनसे भगवान्‌के शीघ्र मिलनेकी सम्भावना की जा सकती है। अपने पुरुषार्थसे भगवान्‌को प्राप्त करना कठिन है। अपना सारा पुरुषार्थ उनके चरणोंपर निक्षेप करके उनकी महती कृपाकी प्रतीक्षा करनी चाहिये और चित्तमें ऐसी व्याकुलता उत्पन्न हो जानी चाहिये कि भगवान्‌के बिना एक क्षण भी रहा न जाय। ऐसी उत्कट उत्कण्ठा होनी चाहिये, जैसे प्यासेको जलकी होती है। जिसके प्राण प्याससे छटपटा रहे हों, वह किसी भी दूसरी वस्तुसे संतुष्ट नहीं हो सकता; अथवा मछली जलके लिये जैसे छटपटाती है, उसी प्रकार भगवान्‌के लिये प्राणोंसे छटपटाहट होनी चाहिये। भक्त वृत्रासुरने भगवान्‌से कहा है—'सर्वसौभाग्यनिधे! मैं तुमको छोड़कर स्वर्ग, ब्रह्मलोक, भूमण्डलका साम्राज्य, पातालका एकच्छत्र राज्य, योगकी सारी सिद्धियाँ—यहाँतक कि मोक्ष भी नहीं चाहता। जैसे पक्षियोंके पंखहीन बच्चे अपनी माँकी बाट देखते रहते हैं, जैसे भूखसे बिलबिलाते हुए बछड़े अपनी माता गौका दूध पीनेके लिये आतुर रहते हैं और जैसे परदेश गये हुए पतिसे मिलनेके लिये उसकी वियोगिनी पत्नी व्याकुल रहती है, वैसे ही हे कमलनेत्र! मेरा मन आपके दर्शनके लिये छटपटा रहा है।'

न नाकपृष्ठं न च पारमेष्ठ्यं न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम्।
न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा समञ्जस त्वा विरहय्य काङ्क्षे॥

अजातपक्षा इव मातरं खगाः स्तन्यं यथा वत्सतराः क्षुधार्ताः ।
प्रियं प्रियेव व्युषितं विषण्णा मनोऽरविन्दाक्ष दिदृक्षते त्वाम् ॥ (श्रीमद्भा० ६ । ११ । २५-२६)

पर भगवान्‌के लिये ऐसी व्याकुलताका होना सहज नहीं है । भगवत्कृपासे ही ऐसा होना सम्भव है । महत्त्वपूर्ण भजनके प्रभावसे जब भगवान्‌की अहैतुकी कृपामें विश्वास होता है, तभी भगवत्कृपाका अनुभव होता है । और भगवत्कृपासे ही भगवान्‌का महत्त्व समझमें आता है एवं तभी भगवान्‌की प्राप्तिके लिये व्याकुलता होती है । भगवान्‌का महत्त्व जाननेके लिये भगवत्प्रेमियोंका सङ्ग करना बहुत आवश्यक है । असलमें मुख्य वस्तु है—भजन । भगवत्प्राप्तिकी इच्छाकी अपेक्षा भी भजनकी इच्छाका अधिक महत्त्व है । बस, भजन बनता रहे; भगवत्प्राप्ति तो जब भगवान् चाहेंगे, तभी होगी । भजन करना तो हमारे अधिकारमें है । भगवान्‌ने कान दिये हैं, जीभ दी है, मन दिया है । इनके द्वारा भगवद्गुण-श्रवण, भगवन्नाम-गुण-गान और भगवत्स्वरूपका मनन-ध्यान करना हमारा काम है । इसमें हम जितना ही आलस्य-प्रमाद करते हैं, उतना ही कर्तव्यसे गिरते हैं । भगवान्‌से भी यही माँगना चाहिये कि भजन निरन्तर बनता रहे । भजनमें कोई शर्त न हो । शर्त हो तो यही कि कभी भजनमें भूल न हो । भजनकी क्षणभरकी भूल चित्तमें अत्यन्त व्याकुलता पैदा कर दे । देवर्षि नारदजीने भगवान्‌के विस्मरणमें परम व्याकुलताको ही भक्ति कहा है—'*तद्विस्मरणे परमव्याकुलता* ।' शर्त न रहनेसे भजन छूटेगा भी नहीं । जिस भजनसे कोई दूसरा फल पानेकी इच्छा होती है, मनोऽनुकूल फल न मिलने' पर उसके मिलनेमें देर होनेसे वह भजन तो छूट सकता है, परंतु जिस भजनका उद्देश्य ही भजन हो वह कैसे छूटेगा ? वह तो जितना बढ़ेगा, उतनी ही उसकी प्रवृत्ति बढ़ेगी; क्योंकि वही तो प्राप्त करनेकी वस्तु है । लाभमें लोभ बढ़ता है । इसी तरह भजनसे भजन बढ़ेगा । और, जहाँ भजन है, वहीं भगवान् हैं । अतएव विश्वास करके भगवद्भजन करनेमें दृढ़तापूर्वक दत्तचित्त हो लग जाना चाहिये—

बिनु बिस्वास भगति नहिं तेहि बिनु द्रवहिं न रामु ।
राम कृपा बिनु सपनेहुँ जीव न लह बिश्रामु ॥
बारि मथें घृत होइ बरु सिकता ते बरु तेल ।
बिनु हरि भजन न भव तरिअ यह सिद्धांत अपेल ॥
(राम० च० मा० ७ । ९० क, १२२ क)

भगवद्भक्तिका आलम्बन सर्वोपरि है

गुरुर्न स स्यात् स्वजनो न स स्यात्
पिता न स स्याज्जननी न सा स्यात् ।
दैवं न तत् स्यान्न पतिश्च स स्या-
न्न मोचयेद् यः समुपेतमृत्युम् ॥
(श्रीमद्भा० ५ । ५ । १८)

(ऋषभदेवजी कहते हैं—) 'जो अपने आत्मीय (स्वजन-सम्बन्धी) जनको भगवद्भक्तिका उपदेश देकर उसे सामने खड़ी हुई मृत्युसे छुटकारा नहीं दिला सकता, वह गुरु गुरु नहीं, स्वजन स्वजन नहीं, पिता पिता नहीं, माता माता नहीं, इष्टदेव इष्टदेव नहीं और स्वामी स्वामी भी नहीं है ।' [अतः जीवके उद्धारके लिये भगवदाश्रय (भगवद्भक्ति) सर्वोपरि साधन है ।]

गीताका कर्मयोग—११

(श्रीमद्भगवद्गीताके तीसरे अध्यायकी विस्तृत व्याख्या)

(लेखक—श्रद्धेय स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

(गताङ्क ४, पृ०-सं० ११९ से आगे)

सम्बन्ध—गीता अपनी शैलीके अनुसार पहले प्रस्तुत विषयका विवेचन करती है। फिर कर्म करनेसे लाभ एवं न करनेसे हानि बतलाती है। तत्पश्चात् उसके अनुसार कर्म करनेकी आज्ञा देती है। यहाँ भी 'भगवन्! आप मुझे घोर कर्ममें क्यों लगाते हैं?'—इस अर्जुनके प्रश्नका उत्तर देते हुए भगवान् पहले कर्मोंके सर्वथा त्यागको असम्भव बतलाते हैं; फिर कर्मोंको स्वरूपसे त्यागकर मनसे विषय-चिन्तन करनेवाले पुरुषको मिथ्याचारी बतलाकर निन्दा करनेके साथ ही आसक्तिरहित होकर कर्म करनेवाले योगीको श्रेष्ठ बतलाते हैं। अब अगले श्लोकमें भगवान् अर्जुनको उसीके अनुसार कर्तव्य-कर्म करनेकी आज्ञा देते हैं—

नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः।
शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्ध्येदकर्मणः॥
(३ । ८)

भावार्थ—

[अर्जुन समता-प्राप्तिको ही श्रेष्ठ मानकर कर्मोंका त्याग करना चाहते हैं। इसलिये भगवान् यहाँ अर्जुनको आज्ञा देते हैं कि—] 'तू नियत-कर्म कर, क्योंकि कर्म न करनेकी अपेक्षा कर्म करना श्रेष्ठ है।'

यहाँ 'ज्यायो ह्यकर्मणः' पदोंसे भगवान् मानो यह कहते हैं कि 'कर्मोंके साथ तू क्यों विरोध करता है? यही नहीं, कर्म न करनेसे श्रेयकी बात तो दूर रही, तेरा जीवन-निर्वाह भी सिद्ध नहीं होगा। अतः कर्म न करनेकी अपेक्षा कर्म करना ही श्रेष्ठ है।

अन्वय—

त्वम्, नियतम्, कर्म, कुरु, हि, अकर्मणः, कर्म, ज्यायः, च, अकर्मणः, ते, शरीरयात्रा, अपि, न, प्रसिद्ध्येत् ॥८॥

*

पद-व्याख्या—

त्वम्—तू।

नियतम् कर्म कुरु—शास्त्रविधिसे नियत किये हुए कर्तव्य-कर्म कर।

शास्त्रोंमें विहित तथा नियत—दो प्रकारके कर्मोंको करनेकी आज्ञा दी गयी है। विहित कर्मका तात्पर्य है सामान्यरूपसे शास्त्रोंमें बताया हुआ आज्ञारूप कर्म। व्रत, उपवास, उपासनादि विहित कर्म हैं। इन विहित कर्मोंको एक व्यक्तिके लिये सम्पूर्णतया कर पाना कठिन है। परंतु निषिद्धका त्याग सुगम है। विहित कर्म न कर सके उसका उतना दोष नहीं जितना निषिद्धके त्यागमें लाभ है; जैसे—झूठ न बोलना, चोरी न करना तथा हिंसा न करना इत्यादि। ऐसे ही नियत कर्मका तात्पर्य है—वर्ण, आश्रम, स्वभाव एवं परिस्थितिके अनुसार जिस कर्मका जिसके लिये जो कर्तव्य प्राप्त हो चुका है, चाहे वह कर्म भोजन करना, व्यापार करना, मकान बनवाना तथा मार्ग भूले हुए व्यक्तिको मार्ग बतलाना आदि किसी प्रकारका ही क्यों न हो।

यहाँ **'नियतम्'** पदसे अर्जुनके प्रति भगवान्के कहनेका तात्पर्य यह है कि तू क्षत्रिय है। अतएव अपने वर्णधर्मके अनुसार युद्ध करना तेरा स्वाभाविक कर्म है (गीता १८ । ४३)। क्षत्रियके लिये युद्धरूप हिंसात्मक कर्म घृणित दीखते हुए भी वस्तुतः वह वैसा नहीं है। अपितु उसके लिये वह नियत-कर्म ही है। पुनः जोर दिया कि 'तू क्षत्रिय है; युद्ध करना तेरा अपना धर्म है'—इस दृष्टिकोणसे भी युद्ध तेरे लिये नियत कर्म है। (गीता २ । ३१) वास्तवमें तो स्वधर्म

और नियत-कर्म दोनों एक ही हैं। यद्यपि दुर्योधन आदिके लिये भी युद्ध स्ववर्णोचित कर्म है, परंतु वह अन्याययुक्त होनेके कारण उस (नियत) कर्मसे अलग है; क्योंकि वे अन्यायपूर्वक युद्ध करके राज्य छीनना चाहते हैं। अतः उनके लिये यह युद्ध नियत तथा धर्मयुक्त कर्म नहीं है। अर्जुनके सामने युद्धका कर्तव्य स्वतः प्राप्त हो गया। अगर इस नियत कर्मका त्याग करेगा तो वह तामस होगा।

हि—क्योंकि।

अकर्मणः कर्म ज्यायः—कर्म न करनेकी अपेक्षा कर्म करना श्रेष्ठ है।

इसी अध्यायके पहले श्लोक (अर्जुनके प्रश्न)में आये हुए **'ज्यायसी'** पदका उत्तर इस सातवें श्लोकमें भगवान् 'ज्यायः' पदसे ही देते हैं। वहाँ अर्जुनका कथन है कि यदि आपको कर्मकी अपेक्षा बुद्धि (समता) श्रेष्ठ मान्य है (—**चेत् कर्मणः बुद्धिः ज्यायसी ते मता**) (तो मुझे कर्ममें क्यों लगाते हैं?) उसके उत्तरमें यहाँ भगवान् कहते हैं कि कर्म न करनेकी अपेक्षा कर्म करना ही मुझे श्रेष्ठ मान्य है (—**अकर्मणः कर्म ज्यायः**)। अर्जुनका विचार युद्धरूप घोर कर्मसे निवृत्त होनेका है और भगवान् चाहते हैं कि युद्धरूप नियत-कर्ममें उन्हें प्रवृत्त करा दूँ। इसीलिये भगवान् आगे (गीता १८। ४८ में) कहते हैं कि दोषयुक्त होनेपर भी सहज (नियत) कर्मका त्याग करना अवाञ्छनीय है; क्योंकि इसके त्यागसे दोष लगता है एवं कर्मोंके साथ अपने धर्मका सम्बन्ध भी बना रहता है। अतः कर्म त्यागनेकी अपेक्षा (नियत) कर्म करना ही श्रेष्ठ है। फिर आसक्तिरहित होकर कर्म करना तो सर्वोत्कृष्ट माना गया है; क्योंकि अब कर्मोंके साथ उसका सर्वथा सम्बन्ध-विच्छेद हो जाता है। अतः भगवान् इस श्लोकके प्रथम चरणमें अर्जुनको अनासक्त होकर नियत कर्म करनेकी आज्ञा देते हैं, साथ ही अगले चरणमें कहते हैं कि बिना कर्म किये तेरा जीवन-निर्वाह भी नहीं होगा।

कर्मयोगमें **'अकर्मणः कर्म ज्यायः'** भगवान्‌का यह प्रधान सिद्धान्त है। इसीको **'मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि'** (गीता २। ४७) पदोंमें वे स्पष्ट करते हैं कि अर्जुन! तेरी कर्म न करनेमें आसक्ति न हो; क्योंकि कर्तव्य-कर्मोंसे जी चुरानेवाला पुरुष निद्रा, आलस्य और प्रमादमें अपना समय नष्ट कर देगा अथवा शास्त्रनिषिद्ध कर्म करेगा, जिससे उसका पतन होगा।

साथ ही यह भी बतलाते हैं कि स्वरूपसे कर्मोंका त्याग करनेकी अपेक्षा कर्म करते हुए कर्मजन्य फलोंसे सम्बन्ध-विच्छेद करना श्रेष्ठ है। कारण यह है कि कामना, वासना, फलासक्ति और पक्षपात आदि ही कर्मोंसे सम्बन्ध जोड़ देते हैं, चाहे मनुष्य कर्म करे अथवा न करे। इसमें कोई विशेषता नहीं है। कर्म-योगका आचरण करनेसे कामना आदिका त्याग बड़ी सुगमतासे हो जाता है।

च—तथा।

'अकर्मणः ते शरीरयात्रा अपि न प्रसिद्ध्येत्'—कर्म न करनेसे तेरा शरीर-निर्वाह भी नहीं सिद्ध होगा।

यदि कर्म ही न करें तो इससे स्वतः छुटकारा (सम्बन्ध-विच्छेद) हो जायगा, अर्जुनके मनमें ऐसा भाव उत्पन्न हो गया था। तब नाना प्रकारकी युक्तियोंद्वारा कर्म करनेके लिये भगवान् उन्हें प्रेरित करते हैं। उन्हीं युक्तियोंमेंसे यह एक युक्ति है, जिसका स्पष्टीकरण करते हुए भगवान् कहते हैं कि अर्जुन! तुझे कर्म तो करने ही पड़ेंगे। अन्यकी तो बात ही क्या है, कर्म किये बिना तेरा शरीर-निर्वाह (तथा समाजका काम चलना) असम्भव हो जायगा।

जैसे ज्ञानयोगमें विवेकके द्वारा संसारसे सम्बन्ध-विच्छेद होता है, वैसे ही कर्मयोगमें कर्तव्यकर्मके ठीक-ठीक अनुष्ठानसे हो जाता है। अतः साधकोंको चाहिये कि वे ज्ञानयोगकी अपेक्षा कर्मयोगको कथमपि न्यून न मानें।

कर्मयोगी शरीरको संसारका मानकर उसके साथ उसे मिला देता है अर्थात् शरीरमें उसका कोई अपनापन नहीं रहता । वह जड-तत्त्वकी एकता (स्थूल, सूक्ष्म और कारण-शरीरकी एकता क्रमशः स्थूल, सूक्ष्म और कारण-संसारसे) करता है, जब कि ज्ञानयोगी चेतन (आत्मा) तत्त्वकी एकता करता है । शरीरमें अपनापन होनेके कारण कर्मयोगीको शरीर-निर्वाहकी चिन्ता कभी नहीं होती है ।

साधकको चेतावनी

अर्जुनके कर्म न करनेकी भावना (धारणा)को भगवान् भलीभाँति जानते हैं । अतः अर्जुनके बहानेसे सभी पारमार्थिक साधकोंको चेतावनी देते हुए भगवान् यह स्पष्ट करना चाहते हैं कि साधक कहाँ भूल करता है । भगवान् कहते हैं, भैया अर्जुन ! केवल तुम्हारी ही बात नहीं है, बल्कि इस पारमार्थिक मार्गके अन्य साधक भी प्रायः इस विषयमें ऐसी ही बड़ी भूल करते हैं । यद्यपि उनकी इच्छा साधन करनेकी रहती है और साधन करते भी हैं, किंतु वे अपनी मनचाही परिस्थिति, अनुकूलता और अपने सुखकी बुद्धि भी साथमें रखते हैं, जो साधकके साधनमें बड़ी बाधा है ।

जो साधक तत्त्व-(भगवत्-) प्राप्तिमें सुगमता ढूँढ़ता है एवं उसमें शीघ्रता भी चाहता है, वह सुगमता (सुख)का रागी है, न कि साधनका प्रेमी । जो सुगमतासे तत्त्व-प्राप्ति चाहता है, उसे कठिनता सहनी पड़ती है और शीघ्रतासे चाहनेवालेको विलम्ब सहना पड़ता है; क्योंकि सुगमता और शीघ्रताकी इच्छा करनेसे साधनका महत्त्व न होकर 'फल' पर दृष्टि चली जाती है, जिससे साधनमें उकताहट प्रतीत होती है और साध्यकी प्राप्तिमें विलम्ब होता है । जिसका दृढ़ निश्चय (उद्देश्य) है कि चाहे जैसे भी हो, 'मुझे तो तत्त्व-(भगवत्-) प्राप्ति होनी ही चाहिये' उसकी दृष्टि सुगमता और शीघ्रतापर नहीं जायगी ।

'मनस्वी कार्यार्थी न गणयति दुःखं न च सुखम्' (नीतिशतक) । 'तत्परताके साथ कार्यमें लगा हुआ मनस्वी व्यक्ति अपने उद्देश्यकी पूर्तिमें कटिबद्ध होकर लग जाता है, फिर वह सुख और दुःखकी ओर नहीं देखता ।' [लोभी मनुष्य भी दुःखकी ओर नहीं देखता । प्रायः ऐसा देखा जाता है कि पसीना आ रहा है, भूख-प्यास लगी है, अथवा शौचकी आवश्यकता जान पड़ती है फिर भी यदि मालकी विशेष बिक्री हो रही है तथा पैसे आ रहे हैं तो वह लोभी व्यापारी अन्य सब कष्ट सह लेता है ।] ठीक लोभीकी भाँति साधककी साध्यमें निष्ठा होनी चाहिये । उसे साध्यकी प्राप्तिके बिना चैनसे न रहा जाय, जीवन भारस्वरूप प्रतीत होने लगे, खाना-पीना तथा आराम आदि कुछ भी अच्छा न लगे, हृदयमें साधनकी तत्परता रहे और उसका आदर करे । साध्यको प्राप्त करनेकी उत्कण्ठा होनेपर देरी तो असह्य होती है, पर वह शीघ्र प्राप्त हो जाय यह इच्छा नहीं होती ।

उत्कण्ठा दूसरी बात है एवं शीघ्र मिलनेकी इच्छा दूसरी बात है । आसक्तिपूर्वक साधन करनेवाला साधक साधनमें सुख-भोग करेगा और उसमें देरी (बाधा) लगनेसे उसे क्रोध आयगा एवं वह साधनमें दोषदृष्टि करेगा, किंतु आदर और प्रेमसे साधन करनेवाला विलम्ब होनेपर आर्तभावसे रोने लगेगा और उसकी उत्कण्ठा अधिक तेजीसे बढ़ेगी । यही शीघ्रता और उत्कण्ठामें अन्तर है । शीघ्रतामें सुख-सुविधाका भाव रहता है, जिससे (फलकी ओर दृष्टि रहनेसे) साधनका आदर कम हो जाता है । शीघ्रतासे चाहनेवाला साधक साध्यकी प्राप्तिमें देरी होनेपर निराश भी हो सकता है । अतएव साधकको साध्यसे भी अधिक आदर साधनको देना चाहिये; जैसा कि माता पार्वतीने कहा है—

जन्म कोटि लगि रगर हमारी ।
बरउँ संभु न त रहउँ कुआरी ॥
तजउँ न नारद कर उपदेसू ।
आपु कहहिं सत बार महेसू ॥
(मानस १ । ८० । ५)

माँ पार्वतीके भावोंमें शीघ्रता कहाँ है ? यहाँ तो साधनको ही (साध्यसे भी अधिक) विशेषतासे आदर दिया गया है ।

इस तीसरे अध्यायके आठवें श्लोकमें भगवान् अर्जुनको निमित्त कर साधकोंको सावधान करते हैं कि उन्हें अपनी अनुकूलता तथा अपने सुखकी बुद्धि (जो कि साधनमें मूल बाधा है) को त्यागकर आवश्यक कर्तव्यकर्मोंको करनेमें बड़ी तत्परतासे लग जाना चाहिये ॥ ८ ॥

(क्रमशः)

रामचरितमानसमें प्रतिपादित भक्तिका स्वरूप

(१)

(लेखक—आचार्य डॉ० श्रीउमाकान्तजी 'कपिध्वज', एम्० ए०, पी-एच्० डी०, काव्यरत्न)

'रामचरितमानस'में सुष्ठु भक्ति-भावनाका सहज सुन्दर आविष्कार है । मनोहर पद्यमयी रचना होनेके कारण यह अतीव श्रुतिमधुर और चित्ताकर्षक बन पड़ा है । ग्रन्थकारने स्वयं 'रघुबर भगति प्रेम परमिति सी'[1] ॥ कहकर यह सिद्ध करनेका प्रयास किया है कि राम-भक्ति और प्रेमका प्रतिपादक ऐसा ग्रन्थ दूसरा नहीं है । ग्रन्थोपसंहारमें भी रामचरित्ररूपी मानससरोवरमें भाव-भक्तिसे अवगाहन करनेवाले भावुकजनोंको संसार-रूपी सूर्यकी प्रचण्ड किरणोंसे न झुलसनेका आश्वासन दिया गया है । मानसमें अभिव्यक्त भक्ति केवल आध्यात्मिक प्रक्रिया ही नहीं है, बल्कि आत्मपरिष्कारका ऐसा सबल साधन है, जिसके द्वारा तुलसीने अपने परिवेश और अपनी प्रकृतिसे ऊपर उठनेका और बृहत्तर समाजसे जुड़नेका प्रयत्न किया है । सांसारिक मोह-माया और भ्रमजालसे बचनेके लिये वे ज्ञानमार्गियोंकी भाँति केवल ज्ञानका आश्रय नहीं देते, प्रत्युत उन्होंने स्वयं अपने उद्धारके लिये नहीं, अपितु समस्त विश्वके कल्याणके लिये विशेषतः कलियुगीय प्राणियोंके परित्राणके लिये अमोघ उपाय—श्रीराम-भक्तिको अपनाया । भक्तिके अभावमें मोक्षप्राप्ति भी उन्हें अभीष्ट नहीं ।

तुलसीकी भक्ति अपने भक्तको अकर्मण्य बना देनेवाली नहीं है, अपितु कर्मयोगी, सतत उद्योगी और तन-मन-वचनसे सदा सावधान राम-सेवक बननेकी सबल प्रेरणा देती है । उनकी भक्तिमें सांसारिक समस्त मर्यादाओंका आदर्श ही अक्षुण्ण हो ऐसी बात नहीं है, बल्कि उनकी भक्ति तो—'श्रुति संमत हरि भक्ति पथ संजुत बिरति बिबेक[3]' है । अर्थात् उनकी भक्ति वेद-शास्त्र-पुराण और स्मृतिकी मर्यादाओंका पोषण करनेवाली है, साथ ही समस्त विश्वमें सतत अमृतस्रोत प्रवाहित करनेवाली है ।

मानसकी भक्तिमें सर्वत्र लोक-मङ्गल-साधनाका विलक्षण अस्तित्व द्रष्टव्य है और सम्भवतः यही कारण है कि स्थलविशेषपर वह व्यक्तिनिष्ठ न होकर समष्टिनिष्ठ हो उठी है । मानसकारके अन्तस्तलसे लोक-मङ्गल-कामनाकी भावना कभी तिरोहित न हुई है । सम्भवतः इसीलिये मानसकी भक्ति योग-वैराग्यका पल्ला छोड़कर निर्द्वन्द्व विचरनेवाली नहीं है, प्रत्युत योगके यम-नियमादि तो उसके रक्षाकवच हैं । योग और वैराग्यका साधन-अङ्कुश भक्तिमार्गके पथिकको कर्तव्य-च्युत एवं प्रमादी नहीं होने देता ।

१—द्रष्टव्य—मानस १ । ३० । ७, २—द्रष्टव्य—मानस ७ । १३० । श्लोक २; ३—द्रष्टव्य—(मानस ७ । १०० (ख) पू० ।

मानसकी भक्तिकी एक और उल्लेखनीय विशेषता है और वह है उसकी समन्वयकारिणी भावना, जो उसके धरातलको दिव्य छवि प्रदान करती है। मानसमें शैव-वैष्णवोंका, लोक-परलोकका, आन्तर-बाह्यका, राग-वैराग्यका ज्ञान-विज्ञानका, चिन्तन-कर्मका, उपासना-योगका तथा जड और चेतनका महान् मङ्गलकारी और अमङ्गलहारी समन्वय विश्वसाहित्यमें अद्वितीय है। मानसकी भक्ति ज्ञानसे ओत-प्रोत तो है ही, साथ ही वह कर्म एवं उपासनासे भी सदैव अनुप्राणित है। यही प्रमुख कारण है कि उनकी भक्तिका द्वार सर्वसाधारणके लिये खुला है—यहाँतक कि उनकी ज्ञानमयी भक्तिके पशु-पक्षीतक अधिकारी हैं[1], फिर शूद्रादिकी तो बात ही क्या है ! मानसप्रतिपादित तुलसीकी भक्तिके अन्तर्गत राम और शिवमें व्यावहारिक भेद है, तात्त्विक नहीं। उन्होंने त्रिगुणात्मकको एकगुणात्मक कहकर अपनी सर्वधर्म-समभाव-भावनाका परिचय दिया है। उनके राम यदि एक स्थलपर यह कहते हुए पाये जाते हैं कि **'सिव समान प्रिय मोहि न दूजा।'**[2] तो दूसरे स्थलपर भगवान् शंकर यह कहते हैं—**'सोइ मम इष्टदेव रघुबीरा**[3]**।'** तात्पर्य यह कि तुलसीकी भक्ति सामान्य प्रभुभक्ति नहीं है, बल्कि उस भक्तिमें तन्मयता और तदीयता आदिके साथ सदाचार कूट-कूटकर भरा है। वह लोकग्राहिता सिखानेवाली न होकर लोकको प्रभुका रूप मानकर उनमें सात्त्विक भावसे रम जानेकी प्रवृत्ति-को बढ़ावा देनेवाली भक्ति है। परंतु यहाँ स्मरणीय यह है कि तुलसीकी भक्ति राममयी नहीं, अपितु सीताराममयी है, तभी तो उन्होंने वन्दना-प्रकरणमें बलात् कह ही दिया—

सीय राममय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी[4]**॥**

'श्रुतिसम्मत'—श्रवण, कीर्तन आदि भक्तिके जो नौ प्रकार युगोंसे चर्चित हैं, वे ही तुलसीको भी मान्य हैं। भक्तिके ये नौ प्रकार गन्तव्यतक पहुँचनेके लिये मानो नौ सोपान हैं, जिनमें भी मुख्यरूपसे तुलसीको दास्य-भावकी भक्ति अधिक प्रिय है। उनकी भक्ति प्रधानतः सेवक-सेव्य-भावसम्पन्ना है। राम उनके स्वामी हैं और वे उनके अनन्याश्रय, दीन, हीन, अनाथ सेवक हैं। 'रामचरितमानस'में आद्योपान्त इसी सेवक-सेव्यभाव-सम्पन्ना भक्तिकी दिव्य छटा देखनेको मिलती है। यहाँतक कि वात्सल्य-सख्यादि भावोंकी परिणति भी अन्ततः दास्यभावमें ही दिखायी गयी है।[5] भगवान् राम स्वयं सेवक-सेव्य-भावकी महत्ता प्रतिपादित करते हुए कहते हैं—'हे हनुमान् ! मुझे समदर्शी कहा जाता है, परंतु मुझे सेवक अति प्रिय है, क्योंकि वह अनन्यगति होता है[6] और अनन्य वह है, जिसकी बुद्धिमें सदैव यह मूलभाव बना रहता है कि मैं सेवक हूँ और चराचर विश्व मेरे स्वामी भगवान्का स्वरूप है।[7] सप्तम सोपानमें काकभुशुण्डि भी इसी सिद्धान्तके पोषक जान पड़ते हैं। उनकी भी स्पष्ट उद्घोषणा है कि—

सेवक सेब्य भाव बिनु भव न तरिअ उरगारि।
भजहु राम पद पंकज अस सिद्धान्त बिचारि[8] **॥**

तुलसीने इसी परिप्रेक्ष्यमें मानसके तृतीय सोपानान्तर्गत दास्य-भावसे सम्पन्न भक्ति और ज्ञानी भक्तको लेकर एक

१–'मानस'में जटायु तथा काकभुशुण्डि आदिके जो प्रसङ्ग यथावसर आये हैं, उनके द्वारा इसकी पुष्टि होती है।
२–द्रष्टव्य, मानस (६ । १ । ३); ३–मानस (१ । ५० । ४); ४–मानस (१ । ७ । १)
५–द्रष्टव्य–कौसल्या और सुग्रीवादिके प्रसङ्ग। ६–द्रष्टव्य–(मानस ४ । २ । ४)
७–सो अनन्य जाकें असि मति न टरइ हनुमंत। मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत॥ (मानस ४ । ३)
८–मानस ७ । ११९ (क)

बहुत ही सुन्दर रूपक खींचा है। उस कथित प्रकरणमें उन्होंने ज्ञानीको प्रौढ़ तथा सेवक भक्तको बालक कहा है। कहना न होगा कि माता-पिताको सदैव बालक-पुत्रकी सुरक्षाकी अधिक चिन्ता बनी रहती है, जबकि उन्हें अपने प्रौढ़ पुत्रकी अधिक चिन्ता नहीं रहती; क्योंकि जीवनके प्रत्येक क्षेत्रमें वह क्षमताके कारण सांसारिक आपदाओंसे बच निकलता है[1]। इसी आधार-पर हम कह सकते हैं कि ज्ञानी भक्त जहाँ ब्रह्मैकात्म्यमें कृतकृत्य होता है, वहाँ दासभक्त सबको अपने ही स्वामीका स्वरूप समझ नित्य आनन्दमग्न रहता है। इस आध्यात्मिक बोधका उसे व्यावहारिक लाभ भी प्राप्त होता है—

'निज प्रभुमय देखहिं जगत केहि सन करहिं बिरोध ॥'

पुनः साधनाकी निरापद सुगमताके दृष्टिकोणसे भी दासभक्ति ज्ञानसे एक कदम आगे बढ़ जाती है। ज्ञान और भक्तिके इस अन्तरको तुलसीने दीपक और मणिके रूपकके माध्यमसे भी बहुत ही सुन्दर ढंगसे स्पष्ट किया है। उन्होंने बताया है कि ज्ञान दीपकके तुल्य है, जिसकी संरचना विशेष रूपसे स्वप्रयत्नपर निर्भर है, जब कि भक्ति मणिके तुल्य है, जिसकी प्राप्ति विशेषतः रामकृपा (प्रभुकृपा) पर निर्भर है। दीपक क्षणिक प्रकाशवान् होता है और केवल प्रकाश दे सकता है, उसकें सांनिध्यमें गाँठ छोड़नेका काम तो बुद्धिको ही करना पड़ेगा। तब कहीं भव-सम्भवखेद दूर होंगे। परंतु मणि न केवल निरन्तर प्रकाशशील है, प्रत्युत आधि-व्याधि, दुःख-दारिद्र्यके नाशकी भी सामर्थ्यवाली है और उसके प्रकाशमें न तो बुद्धिको गाँठका रहस्य जाननेकी आवश्यकता है और न गाँठ छोड़नेकी ही आवश्यकता है। भव-सम्भव खेद तो उसके सांनिध्यमात्रसे ही आप दूर हो जाते हैं।

ज्ञानमार्ग आत्मनिर्भर है और भक्तिमार्ग परमात्म-निर्भर। आत्मनिर्भर व्यक्ति पहले तो सुन्दर ज्ञानकी ही खोज करें, फिर तुरीयावस्थाकी मोटी बत्तीका उसके साथ संयोग करे। इन दोनोंको 'समता'की दीवटपर दृढ़ रूपसे स्थिरचित्तमें भरकर 'योगाग्नि' से उनका प्रज्वलन करे। तात्पर्य यह कि पहले तो सात्त्विक गुणयुक्त चित्त समताके भावपर पूरी तरह स्थिर हो जाय, तब उसमें तुरीय वृत्तिके साथ ज्ञानकी चिकनाई और योग ही क्रियाका संयोग हो; और, वह भी इस प्रकार कि 'सोऽहमस्मि'की अखण्डवृत्ति जागती रहे तब कहीं बुद्धिको वह प्रकाश मिलेगा, जिसके सहारे वह भव-बन्धन अर्थात् चित्-जड-ग्रन्थि मिथ्या-भ्रमकी गाँठ खोल सकेगी।

गोस्वामीजीका कहना है कि 'विज्ञान-दीपक'का जला सकना सबके बलबूतेकी बात नहीं है। पहले तो सात्त्विक श्रद्धाका उद्रेक दैव-संयोगपर निर्भर रहता है। अतएव ज्ञानमार्गकी जड़में ईश-कृपा ही समझिये; फिर स्वप्रयत्नका विश्वासी जीव दैव-कृपापर भी बहुत श्रद्धावान् नहीं रहता, अतएव उसके प्रयत्नको पूरी सफलता मिल ही जायगी, यह भी नहीं कहा जा सकता। अतः

१—मोरें प्रौढ़ तनय सम ग्यानी। बालक सुत सम दास अमानी॥ (मानस ३। ४२। ४) २—करउँ सदा तिन्ह कै रखवारी। (मानस ३। ४२। ३) और इसलिये— जनहि मोर बल निजबल ताही। (मानस ३।४२।५)

३. मानस ७। ११२ (ख)। ४. द्रष्टव्य, मानस ७। ११६ से ७। ११९ (ख) तक।

५. यह गाँठ (ग्रन्थि) ऐसी-वैसी नहीं है—(क) 'जदपि मृषा छूटत कठिनई'। (मा० ७। ११६। २) (ख) 'छूट न ग्रंथि न होइ सुखारी'। (मा० ७। ११६। ३) (ग) 'छूट न अधिक अधिक अरुझाई'। (मा० ७। ११६। ३) घटना तो दूर रही, वह मोहमुग्ध जीवको दिखायी भी नहीं पड़ती—'ग्रंथि छूटि किमि परइ न देखी'। (मा० ७। ११६। ४)

घुणाक्षरन्यायसे यदि दीपक जला भी लिया गया तो उसे बुझा देनेका पहला उपक्रम तो मायाकी ओरसे और दूसरा उपक्रम विषयी देवताओंकी ओरसे होता है, जो इन्द्रियोंके झरोखे बरबस खोल दिया करते हैं। ज्ञानमार्ग-पर बढ़ना मानो तलवारकी धारपर चलना है। प्रयत्नपूर्वक यदि मोक्ष मिल भी गया तो वह भक्तिके बिना टिक न सकेगा; क्योंकि मोक्षका भावनापक्ष, आनन्दपक्ष चिन्तनका नहीं, ज्ञानका नहीं, किंतु अनुभूतिका, भक्तिका पक्ष है। जबतक भवके अस्तित्वका ध्यान और भव-संतरणकी चिन्ता है, तबतक द्वैत तो रहेगा ही और जबतक द्वैतभाव है, तबतक सेवक-सेव्य-भाव बिना कृतार्थता नहीं। अतएव व्यवहारमें रहकर ज्ञानीकी 'सोऽहमस्मि' वाली शेखी व्यर्थ है।

इसके ठीक विपरीत 'भक्तिमणि'के लिये न तो बुद्धिके व्यापारकी आवश्यकता है अर्थात् न अकथ-कहानीकी ग्रन्थि छोरनेकी; न ज्ञानको ही बतानेकी अथवा न 'विज्ञानदीपक' जलानेकी, न समत्वपूर्ण दिया-घृत-बातीके प्रयत्न-साध्य साधन जुटानेकी ही आवश्यकता है। वह तो तुष्टिके लिये, आनन्दके लिये, ग्रहण की जाती है, जैसे भोजन; परंतु प्रभु हमारे बिना प्रयास ही उसे जठराग्निके समान पचाकर हमें पुष्टि दे देते हैं। हमारी तमोरूपिणी अविद्या, जो कि संसृतिकी मूल है, भवके दुःखोंकी जननी है, आप-ही-आप नष्ट हो जाती है। मोहरूपी दारिद्रय उसके पास नहीं आता (वह चिन्तामणि जो ठहरी)। लोभका प्रभञ्जन उसे बुझा नहीं सकता। अपितु मानस-रोग दूर भाग जाते हैं और हर तरहके दुःखोंका लवलेशतक स्वप्नमें भी नहीं रह जाता। (आगामी अङ्कमें समाप्त)

भगवत्प्राप्ति

[गताङ्क सं० ४, पृ० सं० १०३से आगे]

(लेखक—महात्मा श्रीसीतारामदास ओंकारनाथजी महाराज)

हलधर—देखिये खेपा बाबा, मैं ब्रह्मको समझ नहीं पाता। कैसे शान्ति पाऊँगा। पार पानेकी भावना न रहे, ऐसा उपाय बताइये।

खेपा—राम राम, जय राम, सीताराम। केवल राम-राम कहो। किसी प्रकारकी चिन्ता नहीं। एकदम आनन्द-राज्य सुलभ होगा।

हलधर—हाँ, और एक बात। अवतार प्राप्त होनेपर जब 'यदा-यदा'की अन्तःप्रेरणा जाग्रत् होती है, तब 'यदा-यदा'का क्या अभिप्राय होता है?

खेपा—राम राम, सीताराम। 'यदा-यदा'का अभि-प्राय है कि जब-जब धर्मकी हानि और अधर्मका अभ्युत्थान होता है, तब-तब मैं ईश्वर-अवतार ग्रहण करता हूँ। साधुजनोंका परित्राण, दुष्कृतकर्ताओंका विनाश और धर्मकी संस्थापना ही उद्देश्य होता है। एतदर्थ युग-युगमें अवतीर्ण होता हूँ। राम राम।

हलधर—अवतार होनेपर ईश्वर अधर्मका नाश और जिस धर्मकी संस्थापना करता है, वह धर्म क्या है?

खेपा—राम राम, जय जय राम। जो धारण करता है, वही धर्म है। वेद धारण करता है। अतः प्रलय-पयोधिजलसे मत्स्यावतार लेकर उसने वेदोद्धार किया। सत्यमय देवगणोंकी पुष्टिके लिये अमृत-मन्थनकालमें कूर्मरूप धारण किया। इसी प्रकार वाराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, बलराम, बुद्ध, कल्कि-अवतार भी हैं। नारद, कपिल, व्यासदेव, ऋषभप्रभृति सभी भगवदवतार हैं। राम राम, सीताराम। जिसके अन्तरमें 'यदा-यदा' उत्थित होता है, वह भी धर्मसंस्थापना करता

है। भगवान् शंकर, भगवान् रामानुज, भगवान् रामानन्द, प्रेमावतार गौरसुन्दर—इन सभीने धर्म-संस्थापन किया।

हलधर—धर्मका लक्षण क्या है?

खेपा—राम राम, सीताराम, जय राम।

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥
(मनुस्मृति ६। ९२)

धैर्य, क्षमा, इन्द्रिय-दमन, चोरी नहीं करना, शौच, इन्द्रिय-निग्रह, धी, अध्यात्मविद्या, सत्य, अक्रोध—ये धर्मके दस लक्षण हैं।

जिसके अन्तरसे 'यदा यदा' प्रतिध्वनित होता है, उनमें ये दस लक्षण प्रतिष्ठित होते हैं। वही आजीवन पूर्णतः धर्मपालन करता है। धर्मका वैधानिक अर्थ है शास्त्रोक्त कर्म, ईश्वरकी कोटिके मनुष्य सयत्न वे ही कर्म करते हैं। राम राम, सीताराम, जय राम।

हलधर—साधुजनोंके परित्राणका क्या अर्थ है, खेपा बाबा! साधुजनोंका तो अपने ही साधनबलसे उद्धार होता है, भगवान् क्या परित्राण करते हैं?

खेपा—जय राम, सीताराम, राम राम। साधु यदि स्वयं मुक्त हो चुपचाप बैठा रहता है तो यह एक अपराध है। साधुजनका कर्तव्य है—सत्यधर्मका प्रचार करना। भगवान्ने यही कहा है कि 'देखो, मैं भगवान् हूँ, मुझे कोई प्रयोजन नहीं है; तथापि मैं कर्म करता हूँ। तुमलोग भी स्वकर्म करो।' अपने आदर्शद्वारा साधुजनोंको लोक-कल्याणमें नियुक्त करनेका नाम ही साधुजनोंका परित्राण है। राम राम, सीताराम।

हलधर—अर्थात् साधुजनोंका भी कर्तव्य है?

खेपा—राम राम। निश्चय ही—

ज्ञानमज्ञाततत्त्वाय यो दद्यात् सत्पथेऽमृतम्।
कृपालोर्दीननाथस्य देवास्तस्यानुगृह्णते॥
(श्रीमद्भा० ४। १२। ५१)

अज्ञानाच्चैव यो ज्ञानं दद्याद्धर्मोपदेशतः।
कृत्स्नां वा पृथिवीं दद्यात् तेन तुल्यं न तत्फलम्॥
(अनुस्मृति ८। ३)

धर्मोपदेशद्वारा अज्ञ मानवगणको जो ज्ञानदान करता है, उसके फलके समान समस्त पृथिवीदान करनेका फल भी नहीं होता है। राम राम, सीताराम। अज्ञात-तत्त्वका ज्ञानदान करनेवालेपर देवगण अनुग्रह करते हैं।

हलधर—ज्ञानदानका इतना फल!

खेपा—राम राम।

जीवाभयप्रदानं च शरणागतरक्षणम्।
अज्ञानाय ज्ञानदानं परं निर्वाणकारणम्॥
(नारदपञ्चरात्र)

जीवको अभयप्रदान, शरणागतकी रक्षा और अज्ञानीको ज्ञानदान निर्वाणका श्रेष्ठ कारण होता है। सीताराम सीताराम।

हलधर—जो मूर्ख हैं, वे क्या दान करेंगे?

खेपा—राम राम। जो नहीं जानते वे दूसरोंसे सीखकर अज्ञानीको ज्ञानदान दें। शास्त्र इसका अनुमोदन करते हैं। सीताराम। धर्मसंस्थापन साधुजनोंका प्रधान कर्तव्य है।

स्थापयेद्यः परं धर्मं ज्ञानं तत् परमेश्वरम्।
न तस्मादधिको लोके स योगी परमो मतः॥
यः स्थापयितुं शक्तो न कुर्यान्मोहितो जनः।
स योगयुक्तोऽपि मुनिर्नात्यर्थं भगवत्प्रियः॥
(सूतसंहिता)

'जो परमधर्म और परमेश्वर-ज्ञान स्थापन करते हैं, जगत्में उनकी अपेक्षा उत्तम अन्य कोई नहीं है। वे ही परम योगी हैं। धर्मसंस्थापनकी शक्ति रखते हुए भी जो मुनि ऐसा नहीं करते वे मुनि योगयुक्त होनेपर भी भगवान्के प्रिय नहीं होते।' जय राम, सीताराम, राम राम।

हलधर—इसका अर्थ यह कि साधुजन भी धर्मकी संस्थापना करते हैं।

खेपा—जय जय राम, सीताराम। साधुजनको सम्मुख करके भगवान् ही करते हैं। साधुओंको दिखायी पड़ता है। जिसके द्वारा वे धर्मस्थापन करते हैं, उन्हींके अंदर 'यदा-यदा' ध्वनित होता है। सीताराम, राम राम, सीताराम।

'परमात्मा ही जीवोद्धारके लिये आत्मप्रकाश करते हैं। यह अस्वीकार न कर विश्वास करनेकी चेष्टा करनेपर ही जीवका कल्याण होता है। साथ-ही-साथ एक विषयमें विशेष सावधानी बरतनी होगी। अवतारकी मूर्ति ही ईश्वर नहीं होती। मूर्तिमात्रका आश्रय ग्रहण करनेपर परमात्मा अवतीर्ण हो सकते हैं, यह समझना होगा। मूर्तिमात्र ही केवल अवतार नहीं होता।'

केवल राम-राम उठते, बैठते, खाते-पीते, केवल राम-राम। और देरी नहीं है। वही बाँसुरी बज उठी। बुलाहट हो रही है। राम राम करो।

रामका नाम संसारमें सार है, रामका नाम अमृत वाणी।
रामका नाम कोटि पातक हरे, रामका नाम विश्वास माणी।
रामका नाम ले साधु सुमिरन करे, रामका नाम ले भक्ति-कामी।
रामका नाम ले सूर सम्मुख लड़े, पैठि संग्राममें बुद्धि-कामी।

जय जय राम, सीताराम। जय जय राम, सीताराम।

(समाप्त)

आत्मोद्धारके उपाय

(लेखक—स्व० श्रीगणपतरायजी लोहिया)

मनुष्य-शरीर श्रीपरमात्माकी प्राप्तिके लिये ही मिला है। श्रीरामायणमें कहा है—'साधन धाम मोच्छ कर द्वारा।'

'यह मनुष्य-शरीर साधनका घर और मोक्षका दरवाजा है।' गीतामें भी कहा है—'**अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम्**' ॥ (९। ३३)।

इस सुखरहित क्षणभङ्गुर मनुष्य-शरीरको पाकर निरन्तर मेरा ही भजन कर। महापुरुष और उपनिषद् भी चेतावनी दे रही है—

इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः। (केनोप० २। ५)

'यदि इस मनुष्य-जन्ममें ही परमात्माको जान लिया तब तो ठीक है, और यदि इस जन्ममें उसे नहीं जाना तो बड़ी भारी हानि है।'

मनुष्यको जबतक परमात्माकी प्राप्ति नहीं हो जाती, तबतक उसे बारंबार जन्म लेना और मरना पड़ता है। जन्म लेना और मरना—दोनों अत्यन्त कष्टदायी हैं। इस प्रकार जो जन्म-मरणके चक्रमें भ्रमण करना है, यही बड़ी भारी हानि है। एक दिन इस शरीरको छोड़ना ही पड़ेगा, मृत्यु अवश्य आयेगी, और मर जानेपर इस संसारकी कोई भी वस्तु साथ नहीं जायगी। इसलिये बुद्धिमान् मनुष्यका कर्तव्य है कि वह परमात्माकी प्राप्तिके कार्यको सबसे पहले और अवश्य करनेयोग्य समझकर इसीके लिये प्रयत्न करे, नहीं तो बहुत पश्चात्ताप करना पड़ेगा। श्रीरामायणमें कहा गया है—

सो परत्र दुख पावइ सिर धुनि धुनि पछिताइ।
कालहि कर्महि ईस्वरहि मिथ्या दोष लगाइ॥
(मानस ७। ४३)

'जो इस मनुष्य-जन्ममें भगवत्प्राप्ति नहीं कर लेता अथवा परमात्माकी प्राप्तिके कार्यमें ही जो मुख्यरूपसे अपना जीवन नहीं लगा देता, वह मरनेपर परलोकमें महान् दुःख पाता है, सिर धुन-धुनकर पछताता है और अपना दोष न समझकर काल (समय), कर्म (प्रारब्ध) और ईश्वरपर झूठा दोष लगाता है।'

इसलिये मनुष्यको शरीर रहते-रहते या वृद्धावस्था आनेके पहले चेतकर अपने आत्माके कल्याणके साधनमें तत्पर हो जाना चाहिये, यही उसका परम कर्तव्य है।

आत्माके कल्याणके लिये महापुरुषोंने तथा शास्त्रोंमें भी बहुत-से साधन बतलाये हैं। मेरी समझमें इस समय सबके लिये सुलभ और उपयोगी साधन ये दस हैं—

१—निषिद्ध कर्मोंका सर्वथा त्याग।

२—भोजनका संयम (सात्त्विक आहार)।

३—कम बोलना। (वाङ्मय तप—कम बोले, जो बोले वह ऋत, सत्य और सूनृत हो।)

४—विषयों और विषयी पुरुषोंका सङ्ग न करना।

५—नियमपूर्वक एकान्त-सेवन और भगवच्चिन्तन करना।

६—प्रत्येक कर्म श्रीभगवान्‌को अर्पित करना अर्थात् भगवदर्पण बुद्धिसे काम करना।

७—निष्कामभावसे नित्य-निरन्तर श्रीभगवान्‌के नामका जप और कर्तव्य कर्मोंका निर्वाह।

८—श्रद्धा-विश्वाससहित महापुरुषोंका सङ्ग और सत् शास्त्रोंका स्वाध्याय।

९—विवेक-वैराग्ययुक्त चित्तद्वारा श्रीपरमात्माका ध्यान, भजन, पूजन और स्मरण।

१०—निरन्तर साधन-परायण रहना—अपने साधन-पथपर बढ़ते जाना।

अब इनको कुछ विस्तारसे समझना चाहिये।

(१) निषिद्ध कर्मोंका मनुष्यको सर्वथा त्याग कर देना चाहिये। जबतक मनुष्यसे पाप बनते रहते हैं, तबतक वह साधनमें कभी अग्रसर नहीं हो सकता। गीता (१६। २१-२२)में कहा है—

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत्॥

'काम, क्रोध तथा लोभ—ये तीन प्रकारके नरकके द्वार आत्माका नाश करनेवाले अर्थात् उसको अधोगतिमें ले जानेवाले हैं। अतएव इन तीनोंको त्याग देना चाहिये।' क्योंकि—

एतैर्विमुक्तः कौन्तेय तमोद्वारैस्त्रिभिर्नरः।
आचरत्यात्मनः श्रेयस्ततो याति परां गतिम्॥

'हे अर्जुन! इन तीनों नरकोंके द्वारोंसे मुक्त पुरुष अपने कल्याणका आचरण करता है; इससे वह परम गति पाता है अर्थात् मुझको प्राप्त हो जाता है।'

इसलिये पापकर्मोंका त्याग सर्वथा कर देना चाहिये।

(२) भोजनमें संयम रखना भी बहुत आवश्यक है। भोजन शुद्ध सात्त्विक होना चाहिये; साथ ही हल्का, परिमित और सीधा-सादा कम खर्चीला भी होना चाहिये, जिससे समय और धनका अपव्यय न हो और वृत्तियोंके सात्त्विक होनेमें सहायता मिले। (गीतामें सात्त्विक आहारका विवेचन है।)

(३) साधकोंको वाणीका भी संयम रखना चाहिये। कम-से-कम—जहाँ आवश्यक हो वहीं बोले। नहीं तो सांसारिक बातचीतमें हमलोगोंका बहुत-सा समय यों ही चला जाता है। इसलिये सावधान रहकर कम-से-कम बोले और जो बोले शिष्ट-सम्मत, ऋत, सत्य और सूनृत हो। नामके जप तथा ध्यानमें ही लगा रहे।

(४) विषयोंके सेवन और विषयी पुरुषोंके सङ्गसे मनुष्यका विवेक शिथिल हो जाता है। यह बहुत ही बुरा व्यसन है। इसलिये इसका त्याग करे। विषयोंका तो चिन्तन भी हानिकर है। विषयोंमें सुख-बुद्धि एवं रमणीय-बुद्धि होनेसे ही उनका चिन्तन होता है। अतः उनमें जो सुख-बुद्धि, रमणीयबुद्धि हो रही है, उसको अत्यन्त हानिकर समझकर उसका त्याग कर दे और विषयी पुरुषोंका सङ्ग भी न करे। इन दोनोंसे ही बचना चाहिये।

(५) साधनके लिये साधकको नित्य नियमपूर्वक एकान्तसेवनका अभ्यास अवश्य करना चाहिये। एकान्तमें आसनसे बैठकर निष्कामभावपूर्वक परमात्माके नामका जप और उनके स्वरूपका ध्यान करना ही असली साधन

है। ध्यान चाहे साकार, निराकार, सगुण-निर्गुण किसी भी स्वरूपका हो, पर होना चाहिये एक तार और निष्कामभाव एवं आदरसहित। ध्यानके अभावमें भजन, पूजन और भगवद्गुण-स्मरणको रखना चाहिये।

आलस्य और विक्षेप—ये दोनों साधनामें बड़े ही बाधक हैं। इनको अपने पास न आने दे। मन-ही-मन ध्येय स्वरूपकी बारंबार विवेक—वैराग्यपूर्वक आवृत्ति करता रहे। इस प्रकार निरन्तर जागर्ति रखे। एकान्तमें विवेकपूर्वक साधन करनेसे जल्दी उन्नति हो सकती है।

(६) मन-वाणी-शरीरद्वारा जो भी क्रिया करे, वह श्रीपरमात्माको अर्पित करके ही करे। उसे अर्पित कर देनेसे वह क्रिया पवित्र हो जाती है। फिर उसके द्वारा कोई भी धर्मविरुद्ध क्रिया नहीं हो सकती, बल्कि उसकी सारी क्रियाएँ शास्त्रविहित और भगवदर्पणबुद्धिसे ही होने लगती हैं।

(७) श्रीभगवान्‌के नामका जप भगवत्प्राप्तिमें बहुत ही सहायक है। श्रीराम, कृष्ण या और कोई भी शास्त्रोक्त नाम हो, साधक अपनी रुचिके अनुसार उसका जप कर सकता है। इससे अन्तःकरणकी शीघ्र शुद्धि होकर परमात्माकी प्राप्ति हो जाती है। पर नामका जप होना चाहिये निष्कामभावसे और नित्य-निरन्तर। जपका तार हृदयसे टूटे ही नहीं, निरन्तर बना रहे और किसी भी प्रकारकी कामना न हो। श्रीगीताजी-(२ । ७१)में कहा है—

विहाय कामान् यः सर्वान् पुमांश्चरति निःस्पृहः।
निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति॥

'जो सम्पूर्ण कामनाओंको त्यागकर ममतारहित, अहंकाररहित और स्पृहारहित होकर विचरता है, वही शान्तिको प्राप्त होता है।'

नाना प्रकारकी सांसारिक कामनाओंके कारण ही मनुष्य सच्चे लाभसे वञ्चित रह जाता है; क्योंकि ये कामनाएँ मनुष्यके विवेकका हरण कर लेती हैं। मनुष्यका विवेक नष्ट हो जाता है और उसका अपने मार्गसे पतन हो जाता है। गीतामें भी कहा है—'**कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः**' (७ । २०)—भोगोंकी कामनाओंके द्वारा ही मनुष्यका ज्ञान हर लिया जाता है। अतएव सब प्रकारकी कामनाओंका सर्वथा त्याग कर दे। वैसे तो भगवत्प्राप्तिकी कामना भी कामना ही है, किंतु वह कामना अन्य सांसारिक कामनाओंकी निवृत्तिकरके भगवत्प्राप्तिरूप परम शान्तिको प्राप्त करानेमें हेतु होनेके कारण कामना नहीं कही जा सकती, वह तो निष्कामके ही तुल्य है।

(८) साधककी महापुरुषसे भेंट हो जाय तो उनका सङ्ग करना बहुत आवश्यक है। साधनके आरम्भसे लेकर अन्ततक भगवत्प्राप्तिपर्यन्त महापुरुषोंका सङ्ग करते ही रहना चाहिये। सङ्ग करनेका अर्थ उनके पास बैठे रहना मात्र नहीं है। वस्तुतः उनके हृदयका जो उच्चतम अनुभवपूर्ण भाव है, उस भावमें अपने हृदयको मिला देना, उनके भावसे भावित हो जाना ही असली सङ्ग है। महापुरुषोंका सङ्ग श्रद्धा-विश्वासपूर्वक होना चाहिये। श्रद्धा-विश्वास ही प्रधान वस्तु है। श्रद्धा-विश्वास होनेसे ही मनुष्य विशेष लाभ उठा सकता है। भगवत्प्राप्त महापुरुषोंके अनुभवयुक्त वचनोंमें बड़ा भारी प्रभाव होता है। जब श्रद्धालु साधक श्रद्धा-विश्वास-पूर्वक उनका सङ्ग करके उनके वचनोंको हृदयङ्गम करता है, तब तत्काल उनके हृदयके भाव उस साधकके हृदयमें प्रविष्ट हो जाते हैं और वह भी वैसा ही बन जाता है। जब वह किसी महापुरुषसे सुनता है कि 'परमात्माके सिवा और कुछ नहीं है' तो श्रद्धालु साधक उनके वचनोंमें परम श्रद्धा होनेके कारण उसी प्रकारकी स्थितिमें स्वयं स्थित होकर वैसा ही भाव बना लेता है। ऐसे उच्चकोटिके श्रद्धालु साधकके हृदयमें महा-

पुरुषोंके एक वचनसे ही बड़ा भारी काम हो जाता है, जिससे उसे शीघ्र ही भगवत्प्राप्ति हो जाती है। महापुरुषोंके हृदयमें जो परमात्माका भाव है, वह श्रद्धा होनेसे ही पकड़में आता है और स्थिर होता है। भगवान्ने गीता (४ । ३९)में बतलाया है—

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति॥

'जितेन्द्रिय, साधनपरायण और श्रद्धावान् मनुष्य ज्ञान प्राप्त करता है तथा ज्ञानको प्राप्त होकर वह बिना विलम्बके—तत्काल ही भगवत्प्राप्तिरूप परम शान्तिको पा लेता है।'

श्रद्धाकी कसौटी है, तत्परता और तत्परताकी कसौटी है जितेन्द्रियता। जिसमें जितनी श्रद्धा होगी, उतनी ही साधनमें तत्परता होगी और जितनी तत्परता होगी, उतनी ही उसकी इन्द्रियाँ वशमें रहेंगी। श्रद्धा अपने अन्तःकरणके अनुसार होती है।

परमात्मा नित्य सत्य, चेतन, आनन्दमय और सर्वत्र विद्यमान हैं—इस प्रकारकी दृढ धारणा (भावना) होनी ही असली श्रद्धा है। जिसे यह विश्वास हो जाता है, उसे भगवत्प्राप्ति शीघ्र हो जाती है। जहाँ उच्चकोटिकी श्रद्धा हुई कि तुरंत काम बना। यदि महापुरुषोंके वचनोंमें भी प्रत्यक्षकी भाँति श्रद्धा-विश्वास हो जाय तो उनके यह कहते ही कि सच्चिदानन्दघन परमात्मा सर्वव्यापक है, उसका भाव पलट जाता है और वह उसी भावसे भावित हो जाता है। जब कभी वह उन महापुरुषोंकी उस अनुभव-वाणीको स्मरण करता है, तब उसे याद करते ही उसको रोमाञ्च हो जाता है और वह उसी भावमें मग्न हो जाता है।

इसलिये मनुष्यको श्रद्धा-विश्वासपूर्वक महापुरुषोंका सङ्ग करना चाहिये। श्रद्धा होनेके उपाय हैं—श्रद्धा-विषयक पुस्तकें पढ़ना, श्रद्धा होनेके लिये भगवान्से प्रार्थना करना, श्रद्धालु मनुष्योंका सङ्ग करना, भगवन्नामका जप और ध्यान तथा महापुरुषोंके समीप रहना। किंतु अश्रद्धालु मनुष्योंका सङ्ग कभी नहीं करना चाहिये एवं जब भी महापुरुषका सङ्ग करे, उस समय उनके व्यवहारमें यदि कोई बात उनकी शिक्षासे विपरीत लगे तो उसे अपने मनमें स्थान न दे, उसी समय उसे भुला दे।

महापुरुषोंके सङ्गके अभावमें गीता, रामायण आदि सत्-शास्त्रोंका मननपूर्वक स्वाध्याय करना चाहिये; क्योंकि यह भी सत्सङ्ग ही है।

(९) महापुरुषोंका सङ्ग करनेसे मनुष्यके हृदयमें विवेक जाग उठता है। विवेकका अर्थ है—सत् और असत् वस्तुका तत्त्व जान लेना। सत् एक परमात्मा है और वह अविनाशी नित्य सत्य चेतन है तथा जो विनाशशील अनित्य जड वस्तु है, वही असत् है। इन दोनोंका अन्तर समझकर असत्को छोड़कर सत्को दृढतापूर्वक पकड़ लेना ही विवेक है। जबतक विवेक नहीं होता, तबतक पदार्थोंमें राग बना रहता है और बिना वैराग्यके परमात्मामें चित्तकी स्थिरता नहीं होती। विवेक-वैराग्य होनेसे ही साधन करनेकी शैली समझमें आकर पकड़ी जाती है। इसलिये विवेक-वैराग्यको शास्त्र-विचार एवं महापुरुषोंके सङ्गसे जाग्रत् करना चाहिये एवं विवेक-वैराग्यपूर्वक परमात्माका ध्यान करना चाहिये। श्रीपरमात्माका ध्यान बहुत ही उत्तम साधन है। ध्यानके समान और कुछ नहीं। अतः परमात्माके ध्यानमें हर समय निमग्न रहना चाहिये। अपनी वृत्तियोंको परमात्माके ध्यानसे कभी नहीं हटने देना चाहिये। ध्यान अमृत है। वह परमात्माका अमरपद प्रदान करनेवाला है। इसलिये उसे अमृतके समान समझकर उसका सेवन करना चाहिये।

(१०) हर समय सावधान रहे। सदा अपने कल्याणके साधनके परायण हो जाय, उसीमें कटिबद्ध होकर तत्परतासे लगा रहे। सार बात यही है कि हर समय श्रीपरमात्माकी स्मृति रखे, एक क्षण भी उसमें त्रुटि न होने दे।

(भक्ति-अङ्कसे)

विपत्तिको मुस्कराकर पराजित कीजिये !

(लेखक—डॉ० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी०-एच्० डी०)

मनोविज्ञानके अनुसार हमारे बाह्य कर्म तथा शरीर-द्वारा प्रकट किये जानेवाले विभिन्न हाव-भाव, मुख-मुद्राएँ, नाना क्रियाएँ (Activities) गुप्तरूपसे हमारी उन्नत या अवनत मानसिक दशाओंका भी निर्माण किया करती हैं। हम जैसे बाहरसे, वैसे ही भीतरसे भी बदलते रहते हैं। प्रतिदिनके सामाजिक या पारिवारिक जीवनमें आईनेके समान मित्रोंसे मिलते-जुलते या अपने पेशे-व्यापार, दफ्तर या स्कूल-कालेजमें जैसी मनोभावनाएँ हम अपने बाहरी मुखमण्डलपर प्रदर्शित करते हैं, धीरे-धीरे अपने गुप्त मानसिक या अन्तर्जगत्‌में भी प्रत्यक्ष वैसा ही अनुभव (Feel) भी करने लगते हैं। हर्ष, उल्लास, साहस, शौर्य, सफलता, संघर्ष, आनन्द-जैसी समुन्नत और उदात्त भावनाओंका दिखावटी अभिनय करते-करते कालान्तरमें गुप्त मानसिक जगत्‌में भी वैसा ही कल्याणकारी प्रभाव पड़ता रहता है। जैसा बाहरसे दिखाया जाता है, क्रमशः वैसा ही वह अंदरसे भी हो जाता है। जैसा प्रत्यक्ष होता है, वैसा ही हमारा मानसिक जगत् बनता है। अपने गुप्त मानसिक संसारके अनुसार ही हम सुख-दुःख अनुभव करते हैं।

आपमें जो भी मानसिक निर्बलताएँ हों, उन्हें दूर करनेके लिये आप उनके विरोधी स्वस्थ और उदात्त भावों (Higher Emotions)का अभिनय किया कीजिये अर्थात् जैसे भी, जितना भी बने अपने चेहरे-पर मुखमुद्राओंद्वारा उत्तमोत्तम भावोंका प्रदर्शन कीजिये। आईनेके सम्मुख खड़े होकर उत्साह, उल्लास, आत्म-विश्वास, स्वस्थ यौवनके देवोपम भावोंका अभिनय कीजिये। निरन्तर ऐसा ही अभिनय चालू रखिये। आपमें उत्पादक और स्वास्थ्यप्रद भव्य विचारोंका निवास होने लगेगा। विलियम जेम्स लिखते हैं—

'सामान्यतः ऐसा लगता है कि भावनाके बाद ही क्रियाशीलताकी उद्भावना होती है, किंतु असलियत यह है कि हमारी भावना (Feeling) और क्रिया-शीलता (Activity) साथ-साथ चलती हैं। इच्छा-शक्तिके प्रत्यक्ष नियन्त्रणमें अधिक रहनेवाली इस क्रिया-शीलताको हम नियमित कर परोक्षरूपमें नियन्त्रण न रहनेवाली भावनाओंको भी नियमित कर लेते हैं। हम चाहे इच्छाशक्तिद्वारा अपने मनोभावोंको न बदल सकें, किंतु अपनी क्रियाशीलता (External Activity) तो जरूर ही बदल सकते हैं और इस माध्यमसे हम अपने अन्तर-जगत्‌को भी परिवर्तित कर सकते हैं।'

अपने उपर्युक्त मतको कार्यरूप देनेके लिये उनकी सलाह है कि—'यदि आपकी प्रसन्नता सांसारिक दुःख या चिन्ताके कारण बिलीन हो गयी है तो उसे दुबारा प्राप्त करनेका सहज उपाय यह है कि आप अपने कर्म तथा वचनसे प्रसन्नताका अभिनय कीजिये।'

आप इस मनोवैज्ञानिक उपायको काममें लें। हिन्दू-देवी-देवताओंके मुखमण्डलपर सदैव हर्ष, उल्लास और आनन्दकी अनुपम आभा रहती है। आनन्द हमारी आत्माका—ईश्वरका एक विशिष्ट गुण है। एक बार दर्पणके सम्मुख खड़े होकर अपने चेहरेपर आकर्षक, सौम्य तथा सहज मुस्कान धारण कीजिये। भगवान् श्रीकृष्णको आप मधुर मुरली बजाते देखते हैं, आप भी तनकर उत्साहसे मधुर गीत गाइये। यदि गीत न गा सकें, तो कविताका पाठ ही कीजिये। कोई भजन, आरती, गीत ही आनन्दित स्वरमें गुनगुनाइये। ऐसा करनेसे आपको उपर्युक्त मनोवैज्ञानिक तथ्यकी सत्यता ज्ञात हो जायगी।

दैनिक पारिवारिक और सामाजिक जीवनमें आप निश्चय ही परेशान रहते होंगे, पर ऊपर लिखा नुसखा अपनाइये। चेहरेकी मुस्कराहट बनाये रखिये, आपकी आधी मुसीबतें स्वयं गायब हो जायँगी।

एक दुःखी विधवाका उदाहरण डेल कार्नेगीने इन शब्दोंमें दिया है—'वे वृद्ध हैं, विधवा भी हैं; पर वे प्रसन्न भावका अभिनय करके जीवनमें मिठास बनाये हुए हैं। उनसे पूछा जाय कि आप कैसी हैं ? तो वे मुस्कराकर उत्तर देंगी, 'बहुत अच्छी हूँ।' किंतु उनके चेहरेके भाव तथा उनकी वाणीकी वेदना स्पष्ट रूपसे बताती हैं, मानो वे कह रही हों—'काश ! तुम मेरी विपदाओंको जानते !' यदि वे चाहतीं तो सदा दुःखी रहकर अपने जीवनको नष्ट भी कर सकती थीं। पर प्रसन्नताका अभिनय करते-करते उन्होंने अपने मानसिक संतुलनको कायम रखा है। आप भी चाहें तो इस गुणको काममें ला सकते हैं। प्रसन्न दीखनेका स्वभाव बनाइये। आनन्द-तत्त्व ईश्वरका गुण है। आनन्द-तत्त्वकी वृद्धि करना अपने अंदर सोये हुए ईश्वरतत्त्वको जगाना है। प्रसन्नता मनकी सृष्टि है। उसे बढ़ाते रहिये।

स्वेट मार्डेनने एक ऐसी दुःखी महिलाका मनोवैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत किया है, जो स्वभावतः निराश रहती थी और जिसके जीवनमें विषाद, पीड़ा, अभाव कम नहीं थे। पर एक फोटोग्राफरने उसकी मनःस्थिति बदलकर रख दी। उनकी पुस्तक 'आनन्दकी जीवनी शक्ति' (Cheerfulness as a life power) का यह प्रेरक अंश देखिये—

'संयुक्तराज्य अमेरिकाके इतिहासप्रसिद्ध गृहयुद्धमें एक अधेड़ महिलाका पति मर गया। दुःखकी परछाईं उसपर बुरी तरह छा गयी। एक दिन उसे न जाने क्या सूझा कि वह एक फोटोग्राफरके स्टूडियोमें अपना फोटो खिंचवाने पहुँची। जब वह कैमरेके सम्मुख बैठी तो उसने अपने चेहरेको देखा जिसपर एक भयानक उदासी, खिंचाव व कठोरता छायी हुई थी। पिछले कुछ दिनोंसे पास-पड़ोसके बच्चे उसकी इस डरावनी सूरतको देखकर कतराने लगे थे। फोटोग्राफरने काले कपड़ेसे सिर निकालकर कहा—'अपने चेहरेपर आनन्दकी आभा और आँखोंमें चमक लाइये।' महिलाने प्रयत्न किया, किंतु उसकी आँखोंमें बुझापन और उदासी बनी रही।' 'जरा प्रसन्न दीखनेका प्रयास कीजिये।' फोटोग्राफरने पुनः शान्त और जोरदार शब्दोंमें आग्रह किया। महिलाने झुँझलाकर रूखे स्वरमें कहा—'देखिये, महोदय ! यदि आप सोचते हैं कि आपके कहनेभरसे ही किसी शोकग्रस्त उदास अधेड़ महिलाके चेहरेपर प्रसन्नता झलकने लगेगी, उसकी निराशा छू-मन्तर हो जायगी तो मैं कहती हूँ कि आपको मनुष्यकी प्रकृतिका तनिक भी ज्ञान नहीं है। आँखोंमें खुशी लानेके लिये किसी बाहरी साधनाकी आवश्यकता होती है जो मेरे पास नहीं है।'

'अरे नहीं ! प्रसन्नता मनकी सृष्टि है। आप एक बार चेहरेपर आनन्द लानेकी कोशिश तो कीजिये।' फोटोग्राफरने मधुर एवं विनम्र स्वरमें आग्रह किया। फोटोग्राफरके स्वरमें कुछ ऐसी उत्साहवर्धक बात थी, कुछ ऐसा प्रेरक तत्त्व था कि महिलाका विश्वास जाग आया और उसने प्रसन्नमुख होनेका प्रयास किया। इस बार उसे पर्याप्त सफलता मिली। 'हाँ हाँ; बस, ऐसे ही; बहुत खूब, बहुत बढ़िया ! आप तो बीस साल छोटी लगने लगी हैं। जान पड़ता है, आप फिरसे जवान हो आयी हैं।' महिलाके चेहरेपर क्षणिक आभा देखकर और उसके मुरझाये चेहरेको उस आभासे अलंकृत होते देखकर, फोटोग्राफरने महिलाका उत्साह बढ़ाया। फोटो खिंचवानेके बाद महिला दिलमें एक विचित्र पुलक लिये घर आयी। पतिकी मृत्युके पश्चात् यह पहला अवसर था, जब किसीने इस प्रकार उसके प्रति ध्यान दिया था। घर पहुँचते ही वह आईनेके सामने खड़ी हुई और देरतक अपना मुखड़ा निहारती रही। उसने मन-ही-मन कहा, 'हो सकता है, मेरे

मुँहपर कुछ विशेषता रही हो। खैर, फोटोको आने दो, तब देखूँगी कि उस समय मैं कैसी लग रही थी।'

फोटोग्राफरके यहाँसे जब फोटो आया तो देखते ही बनता था। ऐसा प्रतीत होता था मानो महिलाको नयी जिंदगी मिली हो। चेहरा ऐसा जीवन्त था कि उसपर जवानीकी आखिरी बहार—जवानीकी आखिरी लौ जगमगा रही थी और अन्ततः मन-ही-मन स्पष्ट स्वरमें बोली—'यदि मैं उस समय ऐसी हँसमुख लग रही थी तो क्या आज ऐसा न कर पाऊँगी?' वह अपने कक्षमें आयी। श्रृङ्गारकी मेजपर रखे दर्पणमें अपना मुँह देखते हुए वह स्वयंसे बोली—'कैथेरिन, जरा मुस्कराओ तो, जरा प्रसन्न तो होओ।' बस, ऐसा कहनेभरकी देर थी कि हँसमुख छवि उसके चेहरेपर थिरक उठी।' (यह एक विदेशी महिलाका उदाहरण है।)

इस उदाहरणसे स्पष्ट है कि जैसा भाव हम मुख-मण्डलपर या जैसी क्रियाशीलता (Activity)हम सम्पूर्ण शरीरसे दिखाते हैं, अपने मन-मस्तिष्क, (Mental World) और अपने अन्तर जगत् (Internal World) में भी हम वैसा ही अनुभव करने लगते हैं। अपनी क्रियाशीलताको बदलकर हम अपने मानसिक संसारकी भावनाको परिवर्तित कर सकते हैं।

विलियम जेम्सका यह अनुभव परखने योग्य है कि 'प्रसन्नता और आह्लादका अभिनय करते समय दुःख और विषाद (निराशा और खिन्नता)का आपके पास फटकना असम्भव है।' यह मानवकी प्रवृत्ति है कि वह जैसा अभिनय करता है, बादमें वैसा ही अनुभव भी करने लगता है। यह अभिनय धीरे-धीरे वास्तविकतामें बदल जाता है। स्वस्थ एवं साहसपूर्ण क्रियाएँ हमें सुख पहुँचा सकती हैं। अतः हमें चाहिये कि अपनी बाहरी क्रियाओंमें अनुत्साह, नैराश्य और कार्पण्यकी झलक न आने दें। रहीमने क्या ही सुन्दर कहा है—

'रहिमन निज मनकी व्यथा मनहीं राखो गोय।'

अतः सदा प्रसन्न रहिये; क्योंकि **'प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते।'** (गीता २। ६५) प्रसाद-सम्पन्न चित्तवाले (साधक योगी)की बुद्धि शीघ्र ही (एक परमात्मामें) परिनिष्ठित हो भलीभाँति स्थिर हो जाती है।

उदार व्यवहार हर स्थितिमें प्रसन्नतादायक

श्रीताराकान्तराय बंगालके कृष्णनगर राज्यमें उच्च पदपर आसीन थे। नरेश उन्हें अपने मित्रकी भाँति मानते थे। बहुत समयतक उन्होंने राजभवनके ही एक भागमें निवास किया। जाड़ेकी ऋतुमें एक दिन वे बहुत अधिक रात बीतनेपर जब अपने शयन-कक्षमें पहुँचे तो वहाँ उन्होंने देखा कि उनका एक पुराना सेवक उनकी शय्यापर पायँतानेकी ओर सो रहा है। श्रीरायने एक चटाई उठायी और उसे बिछाकर चुपचाप भूमिपर सो गये। कृष्णनगरके नरेशको सबेरे-सबेरे उन्हें एक आवश्यक संदेश सुनाना था। शीघ्रतावश नरेश स्वयं श्रीरायको वह संदेश सुनाने उनके शयन-कक्षकी ओर चले आये। नरेशने उनका नाम लेकर पुकारा, इससे रायमहोदय हड़बड़ाकर उठ बैठे। शय्यापर सोया नौकर भी जाग गया और डरता हुआ एक ओर खड़ा हो गया।

राजाने समाचार सुनानेसे पहले पूछा—'राय महाशय! यह क्या बात है, आप भूमिपर सोते हैं और सेवक शय्यापर?'

श्रीरायने नम्रतापूर्वक कहा—'मैं रातमें लौटा तो यह शय्याके पायँताने सो गया था। मुझे लगा कि इसका स्वास्थ्य ठीक नहीं होगा अथवा काम करते-करते बहुत अधिक थक जानेसे शय्यापर तनिक लेटते ही इसे नींद आ गयी होगी। जगा देनेसे इसे कष्ट होता और चटाईपर सो जानेमें मुझे कोई असुविधा नहीं थी; अपितु इसमें मुझे प्रसन्नता ही हुई।'

महाभागवत ज्योतिपन्त

अठारहवीं शताब्दीमें महाराष्ट्रके सतारा जिलेके बिटे नामक गाँवमें गोपालपन्त नामक एक गरीब ब्राह्मण रहते थे। गोपालपन्त विद्वान् थे और पढ़ानेमें बड़े पटु थे। विद्यार्थियोंको पढ़ाकर वे जीवन-निर्वाह करते थे। गोपालके ज्योतिपन्त नामका एक पुत्र था। पिताने बहुत प्रयत्न किया, बहुत समझाया और मारा-पीटा, पर बीस वर्षकी अवस्थातक ज्योतिपन्तको राम-नाम लेना छोड़कर कोई विद्या न आयी। गायत्री-मन्त्रतक उन्हें याद नहीं हुआ। विद्वान् पिताको इससे बड़ा क्लेश हुआ। मन्द-बुद्धि पुत्रकी अपेक्षा पुत्रहीन रहना उन्हें स्वीकार था। एक दिन क्रोधमें आकर उन्होंने पुत्रको घरसे निकाल दिया और कह दिया कि बिना विद्या पढ़े तुम घरमें कभी न आना।

घरसे निकाले जानेपर ज्योतिपन्त अपने मित्रोंके पास पहुँचे। सब लड़कोंको लेकर वे वनमें चले गये। वहाँ एक गणेशजीका पुराना मन्दिर था। सरलहृदय ज्योतिपन्तने कहा—'विद्याके दाता गणेशजी तो मिल गये। अब इनसे सारी विद्याएँ माँग ली जायँ। ये दयामय क्या इतनी भी दया न करेंगे?' सब लड़कोंसे उन्होंने वहीं बैठकर गणेशजीकी स्तुति करनेको कहा। लड़के थोड़ी देरमें ऊब गये। उन्हें भय हुआ कि देर होनेपर घरपर माता-पिता डाटेंगे। वे सब घर लौटनेको तैयार हो गये। ज्योतिपन्तने कहा—'भाई! तुमलोग भी यहाँ रहते तो तुम्हारा ही लाभ था। मैं तो जबतक गणेशजी स्वयं दर्शन न देंगे, तबतक यहाँसे न हटूँगा। तुमलोगोंको जाना ही हो तो मन्दिरका दरवाजा बंद करके उसे चूने-मिट्टीसे लीप दो, जिसमें कोई बाहरका आदमी मुझे न देखे। गाँवमें मेरे विषयमें किसीसे कुछ कहना मत।' लड़कोंने इसे भी एक खेल समझा। ज्योतिपन्त मन्दिरमें रह गये। द्वार बंद करके लड़कोंने चूने-मिट्टीसे उसे भलीभाँति लीप दिया और सब घर लौट गये।

ज्योतिपन्तकी माताको जब पता लगा कि मेरे पुत्रको पतिदेवने घरसे निकाल दिया है, तब वे बहुत दुःखी हुईं—"पता नहीं लड़का कहाँ होगा। खाया-पीया कि नहीं, न जाने उसकी क्या दशा होगी?' आदि बातें सोचकर वे रोने लगीं। क्रोध उतरनेपर गोपालपन्तको भी पश्चात्ताप हुआ। वे पुत्रको खोजने निकले। जब ज्योतिपन्तका कोई पता न लगा, तब माता-पिताके क्लेशका पार न रहा। पुत्र-वियोगमें दिन-रात वे रोते रहते थे। घरमें चूल्हा नहीं जलता था। इस प्रकार छः दिन बीत गये। छठी रातको भगवान् शंकरने स्वप्नमें गोपालपन्तको आश्वासन दिया—'लड़केके लिये चिन्ता मत करो। तुम्हारा पुत्र बड़ा यशस्वी और भगवान्‌का भक्त होगा।'

मन्दिरमें बंद ज्योतिपन्त छः दिनोंतक गणेशजीकी प्रार्थना करते रहे। उन्हें भूख-प्यास या निद्राका भान ही न हुआ। सातवें दिन चतुर्भुज गणेशजीने दर्शन देकर वरदान माँगनेको कहा। ज्योतिपन्त बोले—'भगवन्! पहले तो मेरी विद्यालाभकी इच्छा थी, किंतु अब तो मैं केवल तत्त्वज्ञान और भगवान्‌की निष्काम प्रेमाभक्ति चाहता हूँ।'

श्रीगणेशजी बोले—'तुम्हारी पहली इच्छाके अनुसार विद्या तो तुम्हें अभी मिल जायगी, पर दूसरा मनोरथ कुछ दिनों बाद पूर्ण होगा। काशी जानेपर भगवान् व्यास तुम्हें दर्शन देंगे और उन्हींसे तुम्हें तत्त्वज्ञान और भक्ति प्राप्त होगी। कोई कार्य हो तो मुझे स्मरण करना। मैं आ जाऊँगा।' भगवान् गणेशजीने ज्योतिपन्त-की जीभपर 'ॐ' लिख दिया और अदृश्य हो गये। ज्योतिपन्तको तत्काल सभी विद्याएँ प्राप्त हो गयीं। वहाँसे घर आये। माता-पिता तथा दूसरे लोगोंने सहसा

उन्हें विद्वान् हुआ देखकर उनकी बातोंका विश्वास किया। जो लड़के उस दिन जंगलसे लौट आये थे, वे अब पछताने लगे।

ज्योतिपन्तके मामा महीपति पूनामें पेशवाके प्रधान कार्यकर्ता थे। माताने लड़केको काम सीखनेके लिये मामाके पास भेज दिया। धनीलोग गरीब सम्बन्धियोंकी उपेक्षा ही करते हैं। मामाने चार रुपये महीनेकी नौकरीपर ज्योतिपन्तको रख लिया। दफ्तरमें हिसाब-किताबका काम बहुत बाकी पड़ा था। पेशवाने तीन दिनोंमें सब बहीखाते ठीक करनेका कड़ा आदेश दे दिया था। काम इतना था कि दफ्तरके सब कर्मचारी मिलकर भी एक महीनेसे कम समयमें उसे पूरा नहीं कर सकते थे। पेशवाकी आज्ञापर बोलनेका किसीको साहस नहीं था। महीपति बड़े चिन्तित थे। ज्योतिपन्तने उनसे कहा—'मामाजी! यदि आप मेरी बात मानें तो तीन दिनोंमें सब बहीखाते ठीक हो जायँगे। एक एकान्त कमरेमें आप बहीखाते, कागज, कलम-दावात, बैठनेके लिये गद्दा-तकिया, रोशनी और शुद्ध जल तथा कुछ फलाहार रखकर कमरा बंद कर दें। मैं जबतक न कहूँ, द्वार न खोलें। मैं तीन दिनोंमें सब काम पूरा कर दूँगा।'

लोगोंने इस बातपर बड़ा व्यङ्ग-विनोद किया, किंतु ज्योतिपन्तकी दृढ़ता देखकर चिन्तातुर महीपतिने सब व्यवस्था कर दी। कमरेका द्वार बंद हो जानेपर ज्योतिपन्तने भगवान् श्रीगणेशजीका पूजनकर उनका स्मरण किया। भगवान् गणपति तुरंत प्रकट हो गये। ज्योतिपन्तने कठिनाई बतायी। हाथमें कलम लेकर वे भवानीनन्दन स्वयं लिखने बैठ गये। तीन दिनोंमें समस्त बहीखाते ठीक-ठीक लिखकर वे अन्तर्धान हो गये।

लोगोंने महीपतिको समझाया—'अनुभवहीन बालकपर विश्वास करना ठीक नहीं हुआ। वह भूख-प्यासके मारे मर गया तो पाप होगा। आपकी बहिन दुखी होकर आपको शाप देगी।' महीपतिको भी बात जँच गयी। तीसरे दिन वे द्वार खोलने जा ही रहे थे कि तभी भीतरसे ज्योतिपन्तने पुकारा। द्वार खुलनेपर सब लोग देखकर दंग रह गये। सारा बहीखाता पूर्णरूपसे लिखकर तैयार रक्खा था।

पेशवाको अनुमान नहीं था कि काम इतना अधिक है। जब बहीखाते उनके सामने दरबारमें आये, तब उन्हें आश्चर्य हुआ कि इतना काम तीन दिनोंमें पूरा कैसे हुआ? अक्षर इतने सुन्दर थे, जिनकी कोई तुलना ही नहीं। उन्होंने काम करनेवालेको उपस्थित करनेकी आज्ञा दी। ज्योतिपन्त पेशवाके सामने लाये गये। इन्होंने नम्रतापूर्वक अपना परिचय दिया और सब बातें सच-सच बता दीं कि किस प्रकार भगवान् गणेशजीकी उनपर कृपा हुई। ज्योतिपन्तपर श्रीगणेशजीकी कृपा समझकर पेशवा बड़े प्रसन्न हुए। अपने हाथसे राजकीय मुहर एवं अधिकारीकी पोशाक देकर उन्हें पुरंदर किलेकी रक्षाका भार सौंप दिया।

अब ज्योतिपन्तका सम्मान महीपतिसे भी अधिक बढ़ गया। पुरंदर किलेमें ही ज्योतिपन्तने अपने माता-पिताको भी बुला लिया। उत्तरी भारतपर पठानोंके आक्रमणके समय जब पेशवाने सेना लेकर उनका सामना किया, तब ज्योतिपन्त भी उनके साथ थे। एक रात स्वप्नमें ज्योतिपन्तको आदेश हुआ—'अब तुम्हें भगवान्की विशेष दया प्राप्त होगी। तुम काशी जाओ!' प्रातःकाल ही उन्होंने पेशवाकी नौकरीसे सदाके लिये छुट्टी ले ली। अपनी सम्पत्ति गरीबोंको बाँट दी और एक ब्राह्मणको साथ लेकर वे काशी चल पड़े।

काशी आकर ज्योतिपन्त मणिकर्णिका घाटपर दोपहरतक गङ्गाजीमें कमरभर जलमें खड़े रहकर 'ॐ'

*

मन्त्रका जप करते। इसके बाद मधुकरी माँगकर ले आते और भगवान्‌को अर्पित करके पा लिया करते। छः महीने यह क्रम निर्विघ्न चला। छः महीने बीतनेपर जब एक दिन ज्योतिपन्त गङ्गाजीमें खड़े जप कर रहे थे, तब एक म्लेच्छने आकर उनपर पानीके छींटे डाल दिये। वे स्नान करके फिर जप करने लगे। ज्योतिपन्तने कुछ आवेशसे कहा—'किसीके अनुष्ठानमें इस प्रकार बाधा डालना उचित नहीं।' म्लेच्छ यह सुनकर हँसने लगा। ज्योतिपन्तने आश्चर्यसे देखा कि वह भगवान् व्यासके रूपमें बदल गया है। ज्योतिपन्तने व्यासजीको प्रणाम किया। भगवान् व्यासने कहा—'तुम्हारा अनुष्ठान पूरा हो गया। आज रात तुम व्यास-मण्डपमें जाकर सो रहो। मैं वहाँ तुम्हें श्रीमद्भागवत दूँगा। उसके पारायणसे तुम्हें यथार्थ तत्त्वज्ञान तथा प्रेमाभक्तिकी प्राप्ति होगी।' फिर द्वादशाक्षर मन्त्रके जपका उपदेश करके व्यासजी अन्तर्धान हो गये।

रातको ज्योतिपन्त व्यासमण्डपमें सोये। प्रातः उठनेपर श्रीमद्भागवत ग्रन्थ उन्हें सिरहाने रक्खा हुआ मिला। अब वे प्रातः मणिकर्णिकामें स्नान करनेके पश्चात् व्यास-मण्डपमें बैठकर सायङ्कालतक भागवतपारायण करने लगे। एक दिन भगवान् शङ्कर ब्राह्मणका वेश बनाकर सामने खड़े होकर उनका पारायण सुनने लगे। भोलेबाबाके प्रभावसे ज्योतिपन्तकी जिह्वा लड़खड़ा गयी। उनसे अस्पष्ट उच्चारण होने लगा। विनोदपूर्वक विश्वनाथजीने कहा—'पण्डित! क्या नित्यप्रति ऐसे ही पारायण करते हो?'

ज्योतिपन्तने बूढ़ेबाबाको पहचान लिया। वे उनके चरणोंमें गिर पड़े। शङ्करजीने कहा—'अब तुम्हारा मनोरथ पूरा हो गया। मेरी कृपासे तुम्हें तत्त्वज्ञान और प्रेमाभक्ति दोनोंकी प्राप्ति हो गयी। अब तुम लोगोंको भजनके मार्गमें लगाकर उनका कल्याण करो।'

काशीमें ज्योतिपन्तको तत्त्वदर्शी एवं परम भगवद्भक्तकी प्रख्याति प्राप्त हो गयी। विद्वानोंने श्रीमद्भागवतके साथ उनको सिंहासनपर बैठाकर उनकी सवारी निकाली और उन्हें महाभागवतकी उपाधि प्रदान की। इसके बाद वे महाराष्ट्र लौट आये। जीवनभर जगह-जगह घूमकर वे भगवद्भक्तिका प्रचार करते रहे। उनके बनवाये अनेक मन्दिर हैं। सं० १८४५ वि०में मार्गशीर्ष कृष्णा त्रयोदशीको उन्होंने यह नश्वर संसार छोड़ा।

ज्योतिपन्तजीकी भक्ति-ज्ञान-वैराग्यपरक अनेक रचनाएँ मराठीमें हैं। उन्होंने ओवी छन्दमें सम्पूर्ण श्रीमद्भागवतका अनुवाद भी किया था, पर वह अब मिलता नहीं है।

भक्तमहिमा-गान

निरखि हरिदासनि नैन सिरात।
स्याम हृदै में जबही आवत मिलत गात सों गात॥
श्रवन होत सुख भवन दवन दुख सुनत छबीली बात।
दूरि होत त्रैताप पाप सब मुख चरनोदक जात॥
बाढ़त अति रति रीति-प्रीति सों सन्त प्रसादै खात।
गद्गद स्वर पुलकित जस गावत नैननि नीर चुचात॥
जिनके मुख मसि घसि लपटाऊँ तिनहिं न संत सुहात।
'व्यास' अनन्य भक्ति बिनु जुग-जुग बहुत गये पछितात॥

—श्रीहरिरामजी 'व्यास'

यज्ञोपवीतं परमं पवित्रम्

(लेखक—आचार्य पं० श्रीराजबलिजी त्रिपाठी, एम्० ए०, व्याकरणशास्त्राचार्य, साहित्यशास्त्री, साहित्यरत्न)

परिभाषा तथा महत्त्व—यज्ञोपवीत द्विजमात्रके लिये धारणीय परम पवित्र सूत्र-प्रतीक है। यह समस्त धर्म्य-कर्तव्यों और अनुष्ठेय उत्तरदायित्वोंका मूर्त प्रतिज्ञान है। इसे ब्रह्मसूत्र तथा यज्ञसूत्र भी कहते हैं। यज्ञका महत्त्व हमारी आर्य-संस्कृतिमें अनुपम है। गीता (३। १०-१२) के अनुसार प्रजापतिने यज्ञसहित प्रजाकी सृष्टिकर पहले (कल्पके आदिमें) ही कह दिया था कि 'इस यज्ञद्वारा तुमलोग वृद्धिको प्राप्त होवो तथा यह यज्ञ तुमलोगोंको अभीष्ट मनोरथ देनेवाला होवे और तुमलोग इस यज्ञद्वारा देवताओंको संतुष्ट करना एवं वे लोग भी तुम लोगोंका उत्कर्ष करेंगे। इस प्रकार परस्पर उत्कर्ष साधते हुए तुम सब परमकल्याण प्राप्त करोगे। यज्ञसे संतुष्ट हुए देवतालोग तुम्हारे लिये निश्चय ही वाञ्छनीय भोग (अन्न-वस्त्रादि) देंगे।' और यतः **'यज्ञः कर्मसमुद्भवः'** (गीता ३। १४)-के अनुसार यज्ञ कर्मसे उत्पन्न होता है, अतः यज्ञीय कर्म प्रत्येक आर्य-संतानका अनुष्ठेय कर्तव्य है।×××

निदान, यज्ञानुष्ठान शास्त्रादेशसे सिद्ध है; किंतु उसका अधिकार द्विजातिसंस्कारलब्ध होता है। संस्कारोंमें आठवाँ 'उपनयन' है। वह मुख्य और प्रसिद्ध है। इसमें विधिपूर्वक यज्ञोपवीत धारण करनेवाला ही यज्ञानुष्ठान—श्रौत-स्मार्त कर्म (देव-पितृ-कर्म) करनेका अधिकारी होता है। इसी प्रकार बुद्धिप्रदाता सर्वश्रेष्ठ गायत्रीमन्त्रकी सिद्धिका अधिकार भी यज्ञोपवीत-ग्रहणके अनन्तर ही प्राप्त होता है। अतः यज्ञोपवीत धार्मिक अनुष्ठानकी पात्रताकी सर्वमान्य प्रामाणिक अर्हता है। इसलिये यज्ञोपवीतके महत्त्व तथा विधि-विधानके सार-तत्त्वोंसे अवगत रहना प्रत्येक द्विजका पुनीत कर्तव्य है। अस्तु!

उपनयनका समय—विधानाचार्य मनु (२। ३६) और याज्ञवल्क्य प्रभृतिके अनुसार ब्राह्मणका उपनयन-संस्कार गर्भ या जन्मके आठवें वर्षमें, क्षत्रियका ग्यारहवें वर्षमें तथा वैश्यका बारहवें वर्षमें होना चाहिये; किंतु ब्रह्मवर्चस्विता अर्थात् ब्राह्मण्य तेजस्विता चाहनेवाले ब्राह्मणका पाँचवें वर्षमें, बल चाहनेवाले क्षत्रियका सातवें वर्षमें और अर्थ चाहनेवाले वैश्यका आठवें वर्षमें भी उपनयन-संस्कार विहित है। (मनु० २। ३७)

उपनयनकी अन्तिम अवधि—मनुस्मृति (२।३८)-के अनुसार यदि ब्राह्मणका यज्ञोपवीत-संस्कार सोलह वर्षोंकी आयुतक, क्षत्रियोंका बाईस वर्षोंकी एवं वैश्योंकी चौबीस वर्षोंकी आयुतक न किया जा सके तो उनको सावित्रीका अधिकार नहीं रह जाता—फिर वे पतित हो जाते हैं। अतः विहित समयपर जनेऊ करा देना आवश्यक कर्तव्य है।

द्विजत्व—यज्ञोपवीतसे बालकका दूसरा जन्म हो जाता है। इसीलिये उसे **'द्विज'** (**—द्वाभ्यां जन्मसंस्काराभ्यां जायते' इति द्विजः**) कहते हैं। इस दूसरे ब्रह्मजन्मकी माता सावित्री (गायत्री) होती है और पिता आचार्य। मनुमहाराज कहते हैं कि—

'मौञ्जीबन्धन (यज्ञोपवीत) संस्कार ब्रह्मत्वाधायक जन्म है, जिसमें गायत्री माता और आचार्य पितृ-स्थानीय होता है।' (मनुस्मृति २। १७०)

द्विजत्व प्राप्ति करना इसलिये अनिवार्य है कि बिना उसके प्राप्त किये श्रौत-स्मार्त किसी भी कर्मका अधिकार नहीं होता—

'न ह्यस्मिन्युज्यते कर्म किञ्चिदामौञ्जिबन्धनात् ।'
(मनु० २ । १७१)

परन्तु, उपनीत-संस्कृत बालक कर्मोंका अधिकारी और अतएव ब्रह्मत्वका पात्र तो हो ही जाता है, समाजमें भी सम्माननीय हो जाता है । भगवान् हनुमान् और आर्यशील भीष्मपितामह इसके निदर्शन हैं, दृष्टान्त हैं । धर्मशास्त्रोंमें ब्रह्मचारीको अग्र सम्मान दिया गया है । अथर्ववेदके एक मन्त्र (११ । ५ । ७) के अनुसार बालकका दूसरा जन्म (उपनयन-संस्कार) हो जाने और उसके गुरुके समीप नियमानुसार तीन दिन रह जानेके बाद उसे देखनेके लिये देवता भी आते हैं—

'तं जातं द्रष्टुमभियान्ति देवाः ।'

यज्ञोपवीतकी तात्त्विकता—यज्ञोपवीत-धारणकी विधि-व्यवस्थामें सांस्कृतिक वैदिक तात्त्विकताकी दृष्टि रखी गयी है, जिनमेंसे कुछ तत्त्वोंका उल्लेख यहाँ किया जा रहा है ।

यज्ञोपवीतका अन्वर्थ नामकरण—'यज्ञोपवीत'का अन्वर्थ है—यज्ञके समीप पहुँचा हुआ, यज्ञीय अधिकार-प्राप्त । यज्ञ परमेश्वरका स्वरूप माना गया है—**'यज्ञो वै विष्णुः ।'** (शतपथ ब्रा० १ । १ । १ । २) उसको प्राप्त करानेवाले श्रौत-स्मार्त कर्मोंकी योग्यता देनेवाला होनेके कारण जनेऊ 'यज्ञोपवीत' कहा गया है—

यज्ञाख्यः परमात्मा य उच्यते चैव होतृभिः ।
उपवीतं ततोऽस्येदं तस्माद् यज्ञोपवीतकम् ॥
(स्मृ० सार०)

अतः यज्ञोपवीतका शब्द-स्वारस्यलभ्य अर्थ है—यज्ञके लिये (अथवा साकार परमेश्वरको प्राप्त करनेके लिये) धारण किया जानेवाला सूत्र (जनेऊ)—चाहे **'यज्ञार्थमुपवीतम्'** अथवा **'यज्ञेन संस्कृतम् उपवीतम्'** इनमेंसे कोई भी विग्रह (अर्थबोधक वाक्य) बोला जाय । यह सूत्र ब्रह्मतत्त्व किंवा वेदतत्त्वका सूचक होनेसे 'ब्रह्मसूत्र' भी कहा गया है—

सूचनाद् ब्रह्मतत्त्वस्य वेदतत्त्वस्य सूचनात् ।
तत्सूत्रमुपवीतं स्याद् ब्रह्मसूत्रमिति स्मृतम् ॥
(स्मृ० प्र०)

'ब्रह्म' निराकार परमेश्वरका और उनका परिचायक वेदका बोधक है । इसलिये चाहे यज्ञोपवीत कहे, चाहे यज्ञसूत्र या ब्रह्मसूत्र—सबका अभिप्राय एक ही है । गायत्री-अधिकार दिलानेवाला होनेके कारण वह 'सावित्री-सूत्र' भी कहा जाता है ।

यज्ञोपवीतमें विहित तत्त्व उसके स्वरूपमें संनिविष्ट हैं । यज्ञोपवीत त्रिवृत्त सूत्रके छानवे चाव्वे और सूत्रके तीन बार त्रिवृत्त होने तथा उसकी ग्रन्थियों एवं ब्रह्म-ग्रन्थोंमें धर्मविशिष्ट अभिप्राय निविष्ट होनेसे यज्ञोपवीतका अद्वितीय धार्मिक एवं तात्त्विक महत्त्व है, जिनके विविध विवेचन उपलब्ध होते हैं । उनमेंसे कुछ यहाँ उपनिबद्ध किये जा रहे हैं ।

(१) धार्मिक मूलग्रन्थ लक्ष ऋचात्मक चार वेद हैं—**'आद्यो वेदश्चतुष्पादः शतसाहस्रसम्मितः'** (वा० पु० ६ । ७) । वेदोंकी संकलित शाखा-संख्या ११३१ है । इन शाखाओंमें १ लाख मन्त्र या ऋचाएँ हैं—**'लक्षं तु वेदाश्चत्वारः'** (चरण-व्यूह ५ । १) । इन मन्त्रोंमें ८० हजार मन्त्र कर्मकाण्डके और १६ हजार मन्त्र उपासनाके माने जाते हैं । यज्ञोपवीतके ९६ चाव्वेका तात्पर्य कर्मकाण्ड और उपासना काण्डके ८०+१६=९६ हजार मन्त्रोंकी चरितार्थताकी कर्तव्यता-से है, जिसका प्रतीक यह ९६ चाव्वेका जनेऊ है । (ज्ञानकाण्डके चार हजार मन्त्रोंका प्रतीकात्मकरूप इसमें गृहीत नहीं है, क्योंकि गीता (४ । ३३)के अनुसार ज्ञानप्राप्ति हो जानेपर सम्पूर्ण कर्मानुष्ठान समाप्त हो जाता है । यज्ञोपवीत त्रैवर्णिक है, अतः प्रथम त्रिवृत्त तत्सूचक है । द्वितीय त्रिवृत्तता ब्रह्मचर्य, गृहस्थ और वानप्रस्थाश्रमोंमें जनेऊकी उपादेयता और प्रयुक्तता सूचित करती है । इसी प्रकार तीसरी त्रिवृत्तता ऋषि, देव

और पितृ, ऋणोंकी कर्तव्यानुष्ठेयता सूचित करती है। गाँठमें बीचकी ग्रन्थियाँ गोत्र-प्रवरोंकी सूचिका होती हैं, जिससे कर्तव्य-कर्मानुष्ठानकी परम्परा बोधित होती है। ब्रह्मग्रन्थि सबका समन्वय कर 'ब्रह्म' (वेद और परमेश्वर) की प्राप्तिके चरम लक्ष्यको संकेतित करती है। यज्ञोपवीतके नौ तन्तुओंमें ॐकार, अग्नि, सर्प, सोम, पितर, प्रजापति, अनिल, सूर्य और विश्वेदेवोंका आवाहन-स्थापन किया जाता है, जिससे उसमें ओजस्विता (तेजस्विता) आ जाती है। यही कारण है कि यज्ञोपवीतधारी गायत्री-जापकके पास म्लेच्छ (भूत-पिशाच) फटकने नहीं पाते।

(२) गायत्रीको वेद-माता कहा गया है। पूरी गायत्री चौबीस अक्षरोंकी होती है। चारों वेदोंकी गायत्रीमें कुल छानबे अक्षर हो जाते हैं। उनका प्रतीक जनेऊके छानबे चाव्वे हैं। यतः गायत्रीमें तीन चरण हैं अतः त्रिवृत्तका विधान भी उससे संगत हो जाता है। आचार्योंका एक श्लोक इसी भावका प्रसिद्ध है—

चतुर्वेदेषु गायत्री चतुर्विंशतिकाक्षरी।
तस्माच्चतुर्गुणं कृत्वा ब्रह्मतन्तुमुदीरयेत्॥

(३) किसी भी कर्ममें देश, काल और पात्र-तत्त्वका विचार सार्वभौम है। मूलतः यज्ञोपवीतमें भी इनके स्वरूपोंको समेटनेकी प्रक्रिया अपनायी गयी है, यथा—

तिथिवारं च नक्षत्रं तत्त्ववेदगुणान्वितम्।
कालत्रयश्च मासाश्च ब्रह्मसूत्रं हि षण्णवम्॥
(सा० वे० छा० परिशिष्ट)

अर्थात् तिथि १५ + वार ७ + नक्षत्र २७ + तत्त्व २५ + वेद ४ + गुण ३ + काल ३ + मास १२=९६ चाव्वेका ब्रह्मसूत्र हो जाता है।

और भी अनेक अभिप्राय और वैशिष्ट्य ब्रह्मसूत्र-निर्माण-विधिमें निविष्ट हैं। किंतु यहाँ दिशा-निर्देशके लिये उपर्युक्त विवेचन ही अलम् है। हाँ, यज्ञोपवीत-निर्माणकी शास्त्रनिर्दिष्ट विधि प्रासङ्गिक है।

यज्ञोपवीत बनानेकी विधि—

बौधायन गृह्यसूत्रमें यज्ञोपवीत बनानेकी विधि **'अथातो यज्ञोपवीतक्रियां व्याख्यास्यामः।'**से बतलायी गयी है। कात्यायन गृह्यसूत्रके परिशिष्टमें भी **'अथातो यज्ञोपवीतनिर्माणप्रकारं वक्ष्यामः'**से आरम्भ कर **'इत्याह भगवान् कात्यायनः'** तकमें यज्ञोपवीत बनानेका प्रकार बतलाया गया है। ऐसे ही अन्य गृह्यसूत्रोंमें थोड़े शब्दान्तर-भेदसे वर्णन मिलता है। स्मृतिकारोंने भी तदनुसार विधि-व्यवस्था की है। उन सबका सारांश यह है—

पवित्र होकर—नित्य क्रियासे निवृत्त होकर (सन्ध्या-वन्दनादि एवं अष्टोत्तरसहस्र अथवा अष्टोत्तरशत गायत्री जपकर) अनध्यायसे रहित दिनोंमें गाँवसे बाहर किसी पवित्र स्थान—गोष्ठ, मन्दिर आदिमें जाकर छानबे चाव्वे ऐसे सूतेको लेवे, जो किसी ब्राह्मण, ब्राह्मण-कुमारी या सधवा धर्म-चारिणी ब्राह्मणीद्वारा काता गया हो। हाथकी अङ्गुलियों-को सटाकर उनके मूल (चाव्वे)में तिगुने सूतेको **'भूः'** उच्चारणकर छानबे चाव्वे लपेटे। फिर उसे चाव्वेसे उतारकर पलाश-पत्तेपर रखे। पुनः **'भुवः'** उच्चारणकर दूसरी बार और वैसे ही **'स्वः'** उच्चारणकर तीसरी बार चाव्वेमें लपेटे। फिर पूर्ववत् पलाश-पत्तेपर रखकर **'आपोहिष्ठा०'**, **'शन्नोदेवी०'** और सावित्री **'तत्सवितुः'**— इन मन्त्रोंसे जलमें भिगोये। तब बायें हाथमें रखकर तीन बार ठोंक कर निचोड़े—जल निकाल दे। इसके बाद टिकुरीसे तीनों व्याहृतियोंका (**ॐ भूर्भुवः स्वः का**) उच्चारण करते हुए ऊर्ध्ववृत (दक्षिणावर्त) ऐंठन दे। फिर उन्हीं व्याहृतियोंका उच्चारण करते हुए अधोमुख (वामावर्त) त्रिगुणित करे और ऐंठन देकर एकमें मिला दे। फिर भींगे पवित्र चेफुएसे माँजकर सुखा दे। इसके बाद दाहिने घुटने और बायें हाथके गासेमें लगाकर तीन लरछा बनावे तथा छोरोंको १½″के लगभगमें

अस्थायी (सरकवाँसी) गाँठ देकर बराबर करे। तदनन्तर दोनों घुटनोंमें लरछोंको दोहरा कर छोरोंकी गाँठ (सरकवाँसी) खोले तथा उनसे दोहरे लरछेको तीन बार लपेट कर तीन गाँठ दे दे। फिर शेष छोरोंके अंशोंमें अपने गोत्रके प्रवरोंकी संख्याके अनुसार २से५ तक गाँठें देकर दोनों छोरोंको परस्पर ऐंठ दे और अन्तमें दोनोंमें एक ग्रन्थि लगा दे। फिर घुटनोंमेंसे एक त्रिलरछेको खींचकर (तीन बार लपेटनेके बाद दी गयी) मूल ब्रह्मग्रन्थिको दृढ़ बना दे। पुनः समेटकर बायें हाथपर रखे और उसके ऊपर जलीयप्रोक्षण करते हुए नौ तन्तुओंमें ॐकार इत्यादि नौ देवोंका आवाहन और स्थापन करे। त्रिवृत्त लरछेमें **'ब्रह्माणं न्यसामि'**, **'विष्णुं न्यसामि'** और **'महेश्वरं न्यसामि'** से त्रिदेवोंको भी प्रतिष्ठापित करे। इसके बाद यज्ञोपवीतको सूर्यके सम्मुख कर **'उदयं तमस्परि'**......'मन्त्रसे अभिमन्त्रित करे और **'यज्ञोपवीतं परमं पवित्रम्'** से यज्ञोपवीत धारण करे।'

प्रायः ये सभी विधियाँ उपाकर्मके दिन सम्पन्न होती हैं, अतः उपाकर्मके यज्ञोपवीतके धारण करनेमें संस्कारकी अपेक्षा नहीं होती, केवल गायत्री मन्त्रसे दस बार अभिमन्त्रितकर **'यज्ञोपवीतं परमं पवित्रम्'**...मन्त्रसे धारण किया जा सकता है।

यद्यपि यज्ञोपवीत ब्राह्मणके लिये कपासके सूतेका, क्षत्रियके लिये शण (क्षौम) सूत्रका और वैश्यके लिये ऊनके सूत्रका विहित है, परंतु यह भी विधान है कि उनके अभावमें कपासका ही धारण किया जा सकता है—जैसा कि आजकल चल रहा है और शास्त्रतः मान्य है।

(आगामी अङ्कमें समाप्त)

साधकोंके प्रति

(निष्कामतासे लाभ और सकामतासे हानि)

हम सब स्वरूपतः परमात्माके अंश हैं—

परंतु ऐसा होनेपर भी कामनाके कारण—

सो माया बस भयउ गोसाईं। बँध्यो कीर मरकटकी नाईं॥

(मानस ७ । ११६ । २)

सभी संसारी खाने-पीने (भोग-भोगने)में ही बँधे हुए हैं। यदि कामना न हो तो बन्धन न हो।

कामनाकी पूर्ति होनेसे अभिमान, अज्ञान, पराधीनता आदि और बढ़ते जाते हैं। अतः कामनाकी पूर्तिसे हानि ही होती है। फिर कामना क्यों की जाय?

अभिमान आसुरी-सम्पत्तिका मूल कारण है (गीता १६ । ४)। अभिमान बहेड़ेके वृक्षके समान है, जिसकी छायामें कलियुग अथवा सम्पूर्ण आसुरी-सम्पत्ति निवास करती है *। कामना की पूर्ति होनेपर प्रसन्नता अवश्य होती है, पर उससे घमण्ड आ जाता है। घमण्डी पुरुष धर्मसे च्युत हो जाता है। इससे भी स्पष्ट है कि कामनाकी पूर्ति होनेसे जितना पतन होता है, उतना कामनाकी अपूर्तिसे नहीं होता। भगवान्‌ने कहा है कि **'आशापाशशतैर्बद्धाः'**(गीता १६ । १२) आशाकी सैकड़ों फाँसियोंसे बँधे हुए मनुष्य **'पतन्ति नरकेऽशुचौ'** (१६ । १६)—अपवित्र नरकोंमें ही गिरते हैं। पूर्ति आशाको बढ़ाती है। यह बात निश्चितरूपसे समझनेकी है कि कामनापूर्ति होनेपर भी कामना मिटती नहीं, अपितु वह और अधिक बढ़ जाती है—**'जिमि प्रति लाभ लोभ अधिकाई॥'**

* महाभारतमें नल-दमयन्तीके उपाख्यानमें आता है कि अभिमान नलके शरीरसे निकलकर बहेड़ेके वृक्षमें प्रवेश कर गया था (महाभारत वन० ७२ । ३८)। इसलिये उसकी छायामें रहनेवालेको कलियुग प्रभावित करता है।

(मानस ६ । १०१ । १)* । एक कामना पूरी होनेपर दूसरी कामना उत्पन्न हो जाती है, जिससे कामनाओंकी श्रृंखला बँध जाती है और कामनाओंके रहते तत्त्वज्ञान, परमात्माकी प्राप्ति असम्भव है । एक बात और है— कामना करनेसे अपूर्ति (अभाव) बढ़ती है और कामनासे रहित होनेपर अपूर्ति सदाके लिये मिट जाती है । इसलिये कहा है कि **'कामः सर्वात्मना हेयः ।'** कामनाको सर्वथा त्याग देना चाहिये ।

कामनाके रहनेपर, कामनाकी पूर्ति होनेपर और कामनाके मिटनेपर—इन तीनों अवस्थाओंपर आप गहरा विचार करें तो यह भलीभाँति अनुभव हो सकता है कि कामनाके रहनेपर बड़ी छटपटी होती है, कामनाकी पूर्ति होनेपर दाद खुजलानेकी तरह थोड़ा-सा सुख तो मालूम होता है, पर पीछे इच्छाओंकी तीव्र जलन बढ़ जाती है । किंतु कामनाके मिटते ही शान्तिकी प्राप्ति हो जाती है—किसी प्रकारकी चिन्ता या व्याकुलता नहीं रहती (गीता २ । ७०-७१) । किंतु कामनायुक्त मनुष्य सदा दुःखी ही रहता है । कामनाकी पूर्ति और अपूर्ति—दोनोंमें ही दुःख होता है, क्योंकि जिनकी कामना की जाती है, वे समस्त सांसारिक सुख-भोग दुःखके ही हेतु हैं—

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते ।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः ॥
(गीता ५ । २२)

'जो ये इन्द्रिय तथा विषयोंके संयोगसे उत्पन्न होनेवाले सब भोग हैं, वे निःसंदेह दुःखके ही हेतु हैं और आदि अन्तवाले अर्थात् अनित्य हैं । इसलिये हे कौन्तेय ! बुद्धिमान् विवेकी पुरुष उनमें नहीं रहता ।'

संसारमें जितने भी दुःख हैं, उन सबका मूल कारण कामना ही है । कामनाके बिना कभी दुःख हो ही नहीं सकता और कामनाके रहते हुए स्वप्नमें भी सुख नहीं मिल सकता—**'काम अछत सुख सपनेहुँ नाहीं ॥'** (मानस ७ । ८९ । १) संसारके समस्त पाप, संताप, दुःख, चिन्ता, क्लेश, निन्दा, अपमान, रोग आदि कामनाके ही फल हैं । नरकोंमें जो कराह रहे हैं, रो रहे हैं, छटपटा रहे हैं—सब कामनाका ही परिणाम है । कामनाके ही कारण मनुष्य बारंबार जन्म-मरणरूपी आवागमनको प्राप्त होता है— **'गतागतं कामकामा लभन्ते ॥'** (गीता ९ । २१) कामनाके नष्ट होनेपर ये पाप-संताप, दुःख आदि सब-के-सब सर्वथा नष्ट हो जाते हैं ।

संत, शास्त्र तो कहते ही हैं , स्वयं भगवान् भी सबको कामनासे रहित होनेके लिये कहते हैं । आवश्यकता है कामना-त्यागके अभ्यास और साधनाकी । साधना वही सिद्धि पा सकती है, जिसमें कामनाके त्यागकी लालसा और भावना बलवती हो । अतः साधकोंको सर्वप्रथम कामना त्यागकी ओर लगना चाहिये ।

---

* न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति । हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते ॥
(श्रीमद्भागवत ९ । १९ । १४)

'विषयोंके उपभोगसे कामना कभी शान्त नहीं होती, अपितु अग्निमें घीकी आहुतिके समान वह अधिकाधिक बढ़ती ही जाती है ।'

बुझै न काम अगिनि तुलसी कहुँ, विषय भोग बहु घी ते ॥ (विनयपत्रिका १९८)

व्रत-सन्दर्भ—

आदित्यव्रत (४)

(गताङ्क पृष्ठ-सं० १४१से आगे)

सौरधर्मोक्त रविवारव्रत (स्कन्दपुराण)

यह व्रत मार्गशीर्षसे वर्षपर्यन्त किया जाता है। व्रतीको चाहिये कि व्रतके दिन नदी आदिपर प्रातः स्नान करके देव और पितरोंका तर्पण करे। फिर शुद्ध भूमिमें बारह दलका पद्म लिखकर उसपर हर महीने सूर्यका पूजन करे। पूजन विधि यह है कि मार्गशीर्षमें 'मित्र'का पूजन, श्रीफलका अर्घ्य, चावलोंका नैवेद्य, गुड़-घीका दान और तीन तुलसीदलका प्राशन करे। पौषमें 'विष्णु'का पूजन, चावल, मूँग और तिलोंकी खिचड़ीका नैवेद्य, बिजौरेका अर्घ्य, घीका दान और तीन पल घीका प्राशन करे। माघमें 'वरुण'का पूजन, तिल-गुड़का नैवेद्य, ऋतुफलका अर्घ्य, उसीका दान और तीन मुट्ठी तिलोंका प्राशन करे। फाल्गुनमें 'सूर्य'का पूजन, जँबीरीनीबूका अर्घ्य, दही और घीका नैवेद्य, दही और चावलोंका दान तथा उन्हींका भोजन करे। चैत्रमें 'भानु'का पूजन, पूरी और घी-का नैवेद्य, दाडिमका अर्घ्य, मिठाईका दान और तीन पल दूधका पान करे। वैशाखमें—'तपन'का पूजन, उड़दके बने हुए घृतयुक्त पदार्थोंका नैवेद्य, दाखका अर्घ्य, घीसहित उड़दोंका दान और गोबरका प्राशन करे। ज्येष्ठमें 'इन्द्र'-का पूजन, रम्भ (दही-सत्तू)का नैवेद्य, उसीका अर्घ्य, दही-भातका दान और तीन अञ्जलि जलका पान करे। आषाढ़में 'सूर्य'का पूजन, चिउड़ेका अर्घ्य, अन्नका दान और तीन काली मिरचोंका प्राशन करे। श्रावणमें 'गभस्ति'का पूजन, चिउड़ेका नैवेद्य, फलोंका अर्घ्य, भोजनका दान और तीन मुट्ठी सत्तूका प्राशन करे। भाद्रपदमें 'यम'का पूजन, घी और चावलोंका नैवेद्य, कूष्माण्डका अर्घ्य, भोजनका दान और गोमूत्रका प्राशन करे। आश्विनमें 'हिरण्यरेता'का पूजन, शक्करका नैवेद्य, दाडिमका अर्घ्य, चावल और शक्कर-का दान और तीन पल खाँडका प्राशन एवं कार्तिकमें 'दिवाकर'का पूजन, खीरका नैवेद्य, रम्भाफल (केले)का अर्घ्य, खीरका दान और खीरका भोजन करे। इस प्रकार बारह महीने करके दूसरे मार्गशीर्षमें उद्यापन और ब्राह्मण-भोजनादि कराकर व्रतका विसर्जन करे तो ब्राह्मण-को विद्या, क्षत्रियको राज्य, वैश्यको सम्पत्ति, शूद्रको सुख, अपुत्रको पुत्र, कुमारीको पति, रोगीको आरोग्यता, कैदीको निर्मुक्ति और आशार्थीको आशासाफल्यकी प्राप्ति होती है।

दानफल-रविवारव्रत (स्कन्दपुराण)

यह व्रत आश्विनके शुक्ल रविवारसे माघकी शुक्ल सप्तमीतक किया जाता है। विधि यह है—प्रातः स्नानादिके पश्चात्—

ध्येयः सदा सवितृमण्डलमध्यवर्ती
नारायणः सरसिजासनसंनिविष्टः।
केयूरवान् मकरकुण्डलवान् किरीटी
हारी हिरण्मयवपुर्धृतशङ्खचक्रः॥

इस मन्त्रसे सूर्यका ध्यान करके सुवर्णकी सूर्यमूर्तिको पद्मासनपर विराजमान कर 'जगन्नाथाय आवाहनम्, पद्मासनाय आसनम्, ग्रहपतये पाद्यम्, त्रैलोक्य-तमोहन्त्रे अर्घ्यम्, मित्राय आचमनीयम्, विश्वतेजसे पञ्चामृतम्, सवित्रे स्नानम्, जगत्पतये वस्त्रम्, त्रिमूर्तये यज्ञोपवीतम्, हरये गन्धम्, सूर्याय अक्षतानि, भास्कराय पुष्पाणि, अहर्पतये धूपम्, अज्ञाननाशिने दीपम्, लोकेशाय नैवेद्यम्, रवये ताम्बूलम्, भानवे दक्षिणाम्, पूष्णे फलम्, खगाय नीराजनम्, भास्कराय पुष्पाञ्जलिम् एवं सर्वात्मने नमः प्रदक्षिणां समर्पयामि कहकर पूजन कराये। (नमः और समर्पयामिका सभी नामोंके साथ उच्चारण करना चाहिये।) इस प्रकार पूजन कर—

दिवाकर नमस्तुभ्यं पापं नाशय भास्कर।
त्रयीमयाय विश्वात्मन् गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते॥'

इस मन्त्रसे अर्घ्य दे। फिर प्रथम वर्षमें ५ प्रस्थ (१० सेर) चावल, दूसरेमें ५ प्रस्थ गेहूँ, तीसरेमें ५ प्रस्थ चने, चौथेमें ५ प्रस्थ तिल और पाँचवेंमें ५ प्रस्थ उड़दोंका दान करे और १२ ब्राह्मणोंको भोजन कराये तो इस व्रतके प्रभावसे समृद्धि-वृद्धि और स्त्री-पुत्रादिका सुख मिलता है। (क्रमशः)

सूर्य और ब्रह्माण्ड

[वैज्ञानिक समन्वयात्मक दृष्टिकोण]

(चतुर्थाङ्क पृ० सं० १३९से आगे)

(लेखक—श्रीशिवनारायणजी गौड़)

संतोष इसी बातका है कि जो नियम पृथ्वीपर लागू होते हैं वे सूर्य और सौरमण्डल ही नहीं, अपितु समस्त ब्रह्माण्डपर लागू होते हैं। जिस पदार्थसे सूर्य बना है उसीसे समस्त नक्षत्र भी बने हैं, इसलिये सूर्यसे सम्बद्ध विषयोंमें जो नियम या सिद्धान्त निश्चित हैं, उनकी सहायतासे दूसरे नक्षत्रों या समस्त तारासमूह एवं विश्व-ब्रह्माण्डके रहस्योंका भेदन किया जा सकता है।

सूर्यकी ही भाँति तारे भी मुख्यतः हाइड्रोजनके बने हैं। तारोंके धरातलके नीचे जाते-जाते दबाव-तापमान बढ़ता जाता है। तारोंके अन्तिम भीतरी भाग या केन्द्रमें तापमान इतना ऊँचा होता है कि वहाँ परमाणु मूलरूपमें नहीं रहकर विखण्डित हो जाते हैं। इस प्रकार उनके केन्द्रमें परमाणुओंके बजाय परमाणु नाभिकों और ऋणाणुओंकी ही धका-पकी चलती रहती है। केन्द्रवर्ती परमाणु मूल परमाणु न रहकर नया रूप धारण करते रहते हैं। इससे गर्मी एवं तेजरूपमें शक्तिकी धाराएँ बहती रहती हैं। सूर्य अपने हाइड्रोजनको हीलियममें बदलता रहता है। दूसरे तारे भी इसी प्रकार अपने भीतरके तत्त्वोंको बदलकर उनसे उत्पन्न प्रकाश, ताप व तेजको हमतक भेजते रहते हैं। तेज, ताप, रंग, ध्वनि-सभी तरंगोंके रूपमें हमतक पहुँचते हैं, जिन्हें तरंग-दैर्ध्यके रूपमें नाप लिया जाता है। इनके आपसी सम्बन्धोंसे दूरी-बनावट आदिका पता लगाकर दूरवर्ती तारोंके बारेमें भी उतनी ही जानकारी प्राप्त कर ली गयी है, जितनी हमें सूर्य या हमारे भूगोलके विषयमें है।

इस सम्बन्धमें दूसरी सहायता हमें सभी पिण्डोंके गोलाकार होनेसे मिलती है। प्रत्येक गोलेमें ३६० अंश होते हैं। गोलेके अर्धव्यास और उनपर बने कोणसे गोलेके बारेमें कई बातें ज्ञात की जा सकती हैं। यह सहायता त्रिभुजसे भी मिलती है। उसके कोणोंका योग १८०अंशके बराबर होता है और किसी रेखापर बने कोणकी सहायतासे त्रिभुजकी अन्य रेखाओं व कोणोंका नाप ज्ञात किया जा सकता है। इस काममें सबसे अधिक उपयोगी लम्बनका सिद्धान्त है, जिसमें किसी भी तारेपर दो भिन्न स्थानोंसे बने कोणकी सहायतासे उसकी दूरीका पता लगा लिया जाता है। हमारी पृथ्वी उत्तरी और दक्षिणी ध्रुवोंपर २३½° पर झुकी सूर्यकी परिक्रमा कर रही है। उत्तरी ध्रुव उत्तरी गोलार्धके ऊपर भागमें सिरेपर दिखायी देता है, विषुवत् रेखापर वह क्षितिजपर दीखता है, पर दक्षिणी गोलार्धमें छिप जाता है।

इस ध्रुवके चारों ओर सात तारोंका समूह दिन-रात परिक्रमा करता रहता है। इन तारोंमें रीछकी

आकृति देखकर पश्चिममें उन्हें उर्सा मेयारिस (महा ऋक्ष) कहा जाता था । भारतवासियोंको ध्रुवकी ध्रुवताके चारों ओर सप्तर्षियोंकी परिक्रमाका आभास मिला । यह एक अजीव संयोग है कि महा ऋक्ष— महर्क्षको सातकी संख्यासे जोड़ दे तो 'सप्तर्क्ष' की ध्वनि 'सप्तर्षि' की ध्वनिके समक्ष आ बैठती है ।

सम्पूर्ण आकाशके गोलेको भी ३६० अंशोंमें बाँटनेसे पृथ्वी, सूर्य और आकाशके गोलोंकी एक जैसी स्थिति हो जाती है । पृथ्वी २४ घंटेमें ३६०° घूमती है तो सप्तर्षि एवं तारे भी २४ घंटेमें ३६०° ही घूमते हैं । इस प्रकार १° पर ४ मिनटका अन्तर पृथ्वीके अक्षांशपर सूर्योदयमें आता है तो यही अन्तर प्रतिदिन तारकोदयमें भी आता है । वर्षभरमें पृथ्वी अपनी परिक्रमा पूरी करके अपने प्रारम्भ विन्दुपर आ जाती है तो तारे भी वर्षभर बाद अपने प्रारम्भिक स्थानपर लौट आते हैं ।

इस सम्बन्धमें एक ही बात स्मरणीय है कि जिस ध्रुवतारेको हम ध्रुव या सर्वथा स्थिर मानते हैं, वह सचमुच सर्वथा स्थिर नहीं है । आज पृथ्वीका अक्ष ध्रुवकी अपेक्षा जिस स्थितिमें है, १४०० ई०में उससे तिगुनी दूरीपर था । २१०० ई०में वह ध्रुवके अधिक निकट पहुँच जायगा और फिर दूर चला जायगा । हमारा वर्तमान ध्रुव सही ध्रुव (नैश्चिक धुरी)से १ ¼° दूर होनेसे सप्तर्षियों व तारामण्डलके समान स्वयं भी एक छोटा-सा चक्कर लगाता है । आकाशीय विषुवत् दोनों ध्रुवोंसे ९०° के कोणपर है ।

इस आकाशमण्डलको १२ खण्डोंमें बाँटकर प्रत्येक खण्डपर विद्यमान तारामण्डलोंसे निर्मित आकृतियों-के आधारपर उन्हें राशिका नाम दिया गया था । जानवरोंकी आकृतियोंपर आधारित होनेसे ग्रीक लोग उन्हें जोडिएक (Zodiac) कहते थे । संयोगसे इन राशियोंको ग्रीक और भारतीय नाम-अर्थोंकी दृष्टिसे एक-जैसे ही हैं । जिस आकाशगङ्गामें हमारा सौर-मण्डल वर्तमान है, वह सगिट्टेरियस (Sagitarias) या धनुष (धनु) राशिपर अवस्थित है ।

अपने निकट होनेसे सूर्य हमें तारोंसे भिन्न दिखायी देता है, पर है वह भी एक प्रकारका तारा ही । तारे हमसे काफी दूर हैं, इसीलिये हमें झिलमिलाते दीपकोंकी तरह दिखायी देते हैं; अन्यथा वे भी सूर्यके समान हैं और कई तो सूर्यकी अपेक्षा भी बड़े हैं ।

जिन तारोंको हम 'एक थाल मोतीसे भरा' समझते हैं, वह भी एक थाल नहीं, आकाशमें अनन्त गुना कड़ाह है, जिसमें तारे इतने दूर-दूर जड़े हैं कि उनके बीच हमारे कितने ही सौरमण्डल समा सकते हैं । उस दूरीको हम गज-फुट या मील-फर्लाङ्गमें नाप नहीं सकते । १,८६,००० मील प्रति सेकेण्डकी तेज चालसे चलनेवाले प्रकाशको सूर्यसे हमतक आनेमें ८ मिनट १८ सेकण्ड लग जाते हैं; पर इस निकटतम तारेसे आनेवाले प्रकाशको हमतक आनेमें ४.३ वर्ष लग जाते हैं । प्रकाश १ सेकेण्डमें १,८६,००० मील चलता है—इस हिसाबसे वर्षभरमें वह १,८६,००० × ६०से० × ६० मि० × २४ घंटा × ३६५ दिन × ४.३ वर्ष=२,६०,००,००,० ०,००, ००० दो नील, साठ खरब मीलकी दूरी पार कर सकेगा । रिगेल नामक तारेपर पहुँचनेमें उसे ६५० वर्ष लगेंगे । हमारी आकाश-गङ्गा एक फूली लम्बी दूरीकी तरह है, पर वह इतनी लम्बी-चौड़ी है कि उसका व्यास ही

१०,० ०,००० प्रकाश वर्ष और मोटाई १०,००० प्रकाश वर्ष है। सूर्य इसके केन्द्रसे लगभग ३०,००० प्र० वर्ष दूर है। विश्वमें ऐसी लगभग ३०,००० लाख (३×१०^{९}) आकाशगङ्गाएँ हैं, जो एक दूसरेसे लगभग १,००, ००० लाख ($१०^{१०}$) प्र० वर्ष दूर हैं। हमारी आकाशगङ्गामें लगभग १०,००,००० लाख ($१०^{११}$) तारे हैं। इससे सभी आकाशगङ्गाओंके अगणित तारोंका सहज ही अनुमान किया जा सकता है।

मनुष्यकी औसत संहति ५० से १०० किलोग्राम होती है। पृथ्वीकी संहति (६×१०^{२४}) कि० ग्रा० है। सूर्यकी संहति इससे ३,००,००० गुनी है। सूर्यकी ईकाईके अनुपातमें आकाशगङ्गाकी संहति उससे $१०^{११}$ गुनी है। विश्वके समस्त तारामण्डलोंकी संहति लगभग ३०×१०^{२०} सूर्यसंहतियोंके बराबर है।

हमारा सौर-मण्डल ३४,००,००,००० मीलका वलयावृत्ति क्षेत्र है, विश्वका विस्तार २२,००,००० प्र० वर्ष आर-पार है। इस विस्तारमें उपलब्ध समस्त पदार्थको समस्त आकाशमें फैला दिया जाय तो $१०^{३३}$ ग्रा० ही घनत्व होगा।

हमारी आकाशगङ्गा आकाशमें अकेली नहीं है। उसके स्थानीय समुदायमें ऐसी ८ आकाशगङ्गाएँ और हैं। हमारा यह आकाश गङ्गाका परिवार २० लाख प्र० वर्षके घेरेमें फैला है। हमारी पृथ्वीको सूर्यकी एक परिक्रमामें १ वर्ष लगता है। धनुपराशिपर स्थित हमारी आकाशगङ्गामें हमारा सौर-मण्डल २०० कि० मी० प्र० से० की चालसे परिक्रमा कर रहा है। अभी वह त्रिगनस तारासमूहमें है। इस प्रकार सूर्य व अन्य तारोंको आकाशगङ्गाकी परिक्रमा पूरी करनेमें २,००० लाख (२×१०^{८}) वर्ष लगते हैं। स्वयं आकाशगङ्गामण्डल भी समस्त वैश्विक मण्डलोंसहित विश्वकी परिक्रमा करता है। उसकी यह परिक्रमा १,००,००० लाख ($१०^{१०}$) वर्षमें पूरी होती है।

कोरी आँखोंसे हम ६,००० से ९,००० तक तारे देख सकते हैं, पर एक समय एक स्थानसे लगभग ३ हजार ही तारे देखे जा सकते हैं। आकाशगङ्गा, नीहारिका या तारा-विश्वमेंसे केवल देवयानी देखी जा सकती है, जो हमसे २० लाख प्रकाश वर्ष दूर है। दूरतम तारा हमसे ८३,००० प्रकाश वर्ष दूर है तो दूरतम नीहारिकाएँ तो १,००,००० लाख प्रकाश वर्ष-तक देखी जा सकती हैं। बड़ा-से-बड़ा दूरबीन केवल १,००,००,००,००० प्र०व०तक देख सकता है। दृश्यमान विश्वका आयतन $१०^{८२}$ $म^{3}$ है, जिसमें ३×१०^{९} आकाशगङ्गाएँ फैली हैं।

यदि तारोंकी चमक १० गुना होती और अन्धकार १० गुना सघन होता तो इनसे १०० गुने विश्वको हम देख सकते थे, पर जो हम देख नहीं सकते, उसके बारेमें भी वैज्ञानिकोंने खोज की है। १९६८में नये प्रकारके तारे खोजे गये, जिन्हें नाड़ी (Pulse)की तरह धड़कनेके कारण 'पुल्सर' कहते हैं। ये तारे तो हमारी आकाशगङ्गामें ही होते हैं। तारेका भीतरी ईंधन समाप्त होनेपर वह 'सुपरनोवा' बन जाता है और अन्तस्फोटसे सफेद बौना या (Neutron Star) बन जाता है। इन्हें देखना कठिन है, पर उसके अन्य तारोंपर पड़नेवाले प्रभावसे उसकी स्थिति आदिका पता लगा लिया जाता है। इन सुपरनोवासे विश्व-किरणें आती हैं। उनसे भी परे कसार नामक तारोंकी खोज की गयी है। कसार क्वाजी स्टेलर (Quasi stars) प्राय तारक होते हैं; इसीलिये उन्हें कसार कहा जाता है। कसारकी संहति सूर्य या सामान्य तारोंसे १० लाख गुनी होती है। अवतक ऐसे ५०० कसारोंका पता लगाया जा चुका है। कास्मिक (वैश्विक) किरणें ३० लाख (३×१०^{६}) प्र० वर्षकी दूरीसे हमतक आती हैं।

नैश्विक किरणोंका पृथ्वीके वातावरणसे ऊपर गुब्बारे, राकेट या उपग्रहकी सहायतासे ग्रहण किया जा सकता

है। अनुमान है कि ये किसी सुपरनोवासे आती होंगी या हो सकता है वे नीहारिकाओं (आकाशगङ्गाओं)के क्षेत्रसे बाहर किसी अज्ञात स्रोतसे आ रही हों।

ये नीहारिकाएँ कल्पनातीत दूर हैं। उदाहरणार्थ कन्या नीलठीका ७५,००,००० सप्तर्षि नी० १०,००,००,००० उत्तरी प्रकाश नी० १३,००,००,००० भूतेश नी० २३,००,००,००० हाइड्रा नी० ३५,००,००,००० प्रकाश वर्ष दूर हैं। कोमाक्लस्टर ४०० लाख प्र० व० दूर है। पर इनकी एक और विशेषता है कि ये हमसे ही नहीं, एक दूसरीसे दूर अनन्त आकाशमें भागी चली जा रही हैं।

इस बातसे लोगोंने अनुमान लगाया है कि हमारा ब्रह्माण्ड ही विस्तृत होता जा रहा है। कुछ इस विस्तारको इस विपरीत उदाहरणद्वारा समझाते हैं कि रेलकी पटरियोंको दूरतक देखनेपर वे मिलती हुई दिखायी देती हैं, उसकी विपरीतता शायद आकाशमें भी हो रहा है।

हमारे लिये सूर्य सबसे अधिक बड़ा भारी, गरम और चमकीला पदार्थ है; पर तुलनात्मकदृष्टिसे स्थिति इससे विपरीत ही दिखायी देती है। आकाशमें ५,००,००० दैत्य (बड़े) तारे हैं। सबसे अधिक चमकीले तारे सिरियसका तापमान १९७००° फा० है। सिरियस इतना गर्म होकर भी एक श्वेत बौना ही है। वह इतना भारी है कि उसकी एक घन इंच मिट्टीका वजन १ टन होगा। वह इतना विशाल है कि पृथ्वी यदि सूर्यकी अपेक्षा उसके पास रखी जाय तो सूर्य यदि उसके केन्द्रमें हो तो पृथ्वी भी नाभिके व धरातलके बीचोबीच ही दिखायी देगी। पर वह विरल इतना है कि हमारी श्वास भी उससे ३ हजार गुनी भारी होती है।

(आगामी अङ्कमें समाप्य)

प्रभाकरकी पावन-प्रशस्ति

(रचयिता—श्रीवेदप्रकाशजी द्विवेदी, 'प्रकाश')

भरा हुआ तेजस्व अपरिमित, है जिनका शुचि गान,
उन्हीं ज्योतिके जनक सूर्यका कितना है महिमान।
धरती-नभके वही देवता, देते नित वरदान,
रश्मि-रश्मिके प्रभा-दानसे करते जग-कल्यान॥

सभी मानते गौरवसे, मनसे पावन आधार,
जीवन-धाराके संचालक प्रेरक पूर्ण अपार।
भरे हुए हैं ग्रन्थ तुम्हारे गौरवसे अभिषिक्त,
किसने नहीं कृपा माँगी है, कौन न उससे सिक्त॥

रावणके वधके निमित्त अवतरित राम तव वंश,
कितनी दिव्य विभूति हुई हैं 'रविकुल' की अवतंश।
घर-घरके देवता सूर्य हैं, घर-घरके अभिमान,
कौन सृष्टिमें ऐसा है जो करे न कीर्ति-बखान॥

पढ़ो, समझो और करो

(१)

गायत्रीका प्रभाव और महिमा

[मृत्यु टल गयी]

होलीके उपलक्षमें पंद्रह दिनोंके अवकाश होनेपर विचार हुआ कि इस समयका सदुपयोग किसी पवित्र तीर्थमें रहकर किया जाय। इस सद्विचारका समर्थन एक परिचित सज्जनद्वारा भी किये जानेपर उज्जयिनी जाकर वहाँ स्नान-दर्शन आदि करके श्रीॐकारेश्वर (नर्मदातट) पर निवास करते हुए भजन-साधन करनेका निश्चय किया गया। तदनुसार अवन्तिकासे पैदल चलकर हम ॐकारेश्वर पहुँचे। वहाँ दर्शनादि करके, परिक्रमा-मार्गमें जहाँसे श्रीनर्मदाजीकी छोटी धारा (कावेरी) पृथक् होती है, वहाँ एकान्त स्थानपर एक अश्वत्थवृक्षके नीचे चबूतरेपर रहकर भगवच्चिन्तन, गायत्री-जप और ध्यानादि साधन किया जाने लगा। रातके समय हिंसक जीवोंसे रक्षा, प्रकाश तथा शीत-निवारणार्थ अग्नि प्रज्वलित कर ली जाती थी। श्रीनर्मदाजीकी छोटी धाराके उस पार उत्तरमें पुलिस-चौकी थी। एक रातको पुलिस-कर्मचारियोंने दूरसे उस प्रकाशको देखकर अनुमान लगाया कि यहाँ समाजविरोधी तत्त्वों (चोर-डाकू आदि) का गिरोह होगा, जो अपनी किसी भावी आपराधिक योजनाके लिये एकत्र हुआ होगा। अतः पुलिसद्वारा उस स्थानके आस-पासका घेरा डाल दिया गया। पुनः घेरेको छोटा करते हुए पुलिसजन हमारे निकट आते गये। वहाँ पहुँचकर वे इधर-उधर देखने तथा तलाशी लेने एवं हमसे पूछ-ताछ करने लगे। विवशतावश नियम भङ्गकर हमें उनके प्रश्नोंके उत्तर देने पड़े।

जातिके प्रश्नपर ब्राह्मण बतानेपर कहा गया कि—'आप ब्राह्मण हैं' तो गायत्री-मन्त्र याद होना आवश्यक है। मेरे गायत्रीके उच्चारण करते ही अधिकारी महोदय 'गरल सुधा रिपु करइ मिताई' (रा० च० मा०) के अनुसार पसीज गये और पश्चात्ताप करते हुए आदरपूर्वक कहने लगे कि—अभी थोड़ी ही देर पहले मैंने आपपर निशाना साध लिया था, मेरा लक्ष्य अचूक है। परंतु जैसे ही मैंने लक्ष्य जमाया कि हाथसे बंदूक ही छूट गयी—मानो किसीने खींच ली हो। भगवान्‌ने ही आज आप लोगोंकी रक्षा की है। यदि ऐसा न होता तो अभी यहाँ आपकी मृत देह पड़ी होती। इस घोर मृत्यु-संकटसे आप जो आज बच सके हैं उसमें परमात्माकी दया ही प्रमुख (हेतु) है।

पुलिस-अधिकारियोंने आग्रह किया कि अब आप-लोग उस पार हमारे समीप चलकर रहें। आपको वहाँ कोई कष्ट न होगा। वहाँ हम आपकी आवश्यकताके अनुसार व्यवस्था एवं सेवा करेंगे। हमारे स्वीकार न करनेपर उक्त पुलिस-दल सदय तथा सुहृद् बनकर हमारे पाससे वापस लौट गया। गायत्री-जप तथा उनकी महिमाके प्रभावसे ही उस दिन प्रत्यक्षतः हमारी प्राणरक्षा हुई, इसमें हमें कोई संदेह नहीं है। (द्विजमात्रको गायत्री-जप अवश्य करना चाहिये)।

—देवीप्रसाद तिवारी

(२)

गोरक्षार्थ त्यागमयी तत्परता

विदिशासे लगभग १० मील दूर मूडरा (गजार) ग्रामनिवासी एक बढ़ई (सुथार)के जीवनकी यह सत्य घटना है। गतवर्ष ग्रीष्म ऋतुमें एक दिन संयोगसे उनके मकानमें आग लग गयी। मकानमें लकड़ी, घास और उपलोंका भंडार था। मकानकी छत बाँसों और खपरैलसे छायी हुई थी। मकानमें लगी आगको देखकर बढ़ई और उनके परिवारके लोगोंने अपना महत्त्वपूर्ण सामान घरके बाहर फेंकना आरम्भ कर

दिया । गाँवनिवासियोंने भी सामान निकालने तथा पानी ला-लाकर आग बुझानेमें बहुत तत्परतासे सहायता की । मकानका महत्त्वपूर्ण सामान तथा प्राणियों—वृद्ध, बाल-बच्चे, स्त्रियों—सबके बाहर हो जानेके बाद कुँओंसे पानी ला-लाकर अग्निको शान्त करनेका प्रयास किया जाने लगा । परंतु पर्याप्त जलके अभावमें तथा वायुकी गति विपरीत होनेके कारण आग फैलती ही जा रही थी । मकानमें रखे कंडों, लकड़ियों तथा घासमें भी आग लग जानेके कारण अग्नि वेगपूर्वक पूरे मकानमें फैल चुकी थी । उसी समय बढ़ईकी पत्नीको याद आया कि गाय-बछिया तो सार (बरामदे)में ही बँधी रह गयी हैं ! वह घबराने लगी—'हे राम ! अब क्या हो ? कैसे क्या किया जाय ? आग चारों ओर फैल चुकी थी । गाय-बछिया दोनोंका जीवन संकटमें था । आगकी लपटोंकी तपनसे त्रस्त हो गाय-बछिया दोनों रँभाने लगी थीं ।

गो-माता तथा बछियाकी करुण-पुकार सुनकर बढ़ईसे अब न रहा गया । सबके देखते-देखते वे अग्निकी लपटोंकी परवाह किये बिना तत्काल मकानमें घुस गये । सारमें पहुँचते ही तेज लपटोंसे उनके शरीरके कपड़े जलने लगे । वे उनको फेंक, एक पलका विलम्ब किये बिना ही गाय-बछियाके पास पहुँच गये और दोनोंको साँकलसे खोल दिया । परंतु आगने तो उन निरीह जीवोंको चारों ओरसे घेर रक्खा था । वे निकलें भी तो कहाँसे ? तभी दैवी प्रेरणासे प्रेरित हो उन सज्जनने पास ही रखे हुए एक मूसलसे सारकी दीवारें, जो कच्ची थीं, तोड़ करके किसी तरह छोटा-सा रास्ता बनाकर गाय-बछियाको बाहर निकाला । जब वे स्वयं बाहर आने लगे तो जगह-जगह जल जानेके कारण एकदम बेहोश होकर गिर पड़े । उनका चेहरा, बाल और दोनों हाथ काफी झुलस गये थे । लोगोंने उन्हें कम्बल ओढ़ाकर तत्काल विदिशाके अस्पतालमें ले जाकर भर्ती करा दिया । कुछ समय पश्चात् जब उन्हें होश हुआ तो उनका पहला प्रश्न था—'गाय-बछियाको तो कुछ नहीं हुआ ? वे दोनों ही ठीक हैं न ?' उपस्थित लोगोंने बता दिया कि 'भाई, जहाँ तुम-जैसे गो-रक्षक हों वहाँ भला गो-माताका एक रोम भी कैसे जल सकता था ?' वस्तुतः भगवत्कृपासे (चमत्कारिक ढंगसे) गाय तथा बछिया दोनोंके शरीरोंपर आगका कोई भी कुप्रभाव न हुआ । यह सुनकर सुथारका मुख एक अप्रितम संतोषकी आभासे दीप्त हो उठा । गो-माताके आशीर्वादसे उन बढ़ई महाशयको शीघ्र ही आराम भी हो गया । ठीक होनेपर उनकी त्वचा तो अवश्य ही कई जगहसे सिकुड़ गयी तथा हाथ-पैरोंमें जलनेके चिह्न भी स्थायीरूपसे बन गये, पर अब वे विश्वकर्मा महोदय प्रसन्न एवं शान्त-चित्त हो जीवन-यापन कर रहे हैं । पहलेकी अपेक्षा आज उनका जीवन अधिक सुखी, श्रीसम्पन्न एवं शान्तिपूर्ण है । गोरक्षासे सब कुछ सम्भव है । —रघुराज शर्मा, चतुर्वेदी

(३)

सुन्दर-काण्डके पाठका चमत्कार

समय-समयपर जीवनमें आई हुई अनेक आपत्तियों एवं विपत्तियोंके निवारणार्थ श्रीरामचरितमानस अथवा केवल 'सुन्दरकाण्ड'के पाठका अद्भुत चमत्कार अनेक श्रद्धालु व्यक्ति मानते आये हैं एवं लाभ उठा चुके हैं । विपत्ति-कालमें मनुष्यकी बुद्धिमें किस प्रकार पूर्ण सात्त्विक श्रद्धा जाग्रत् हो जाती है, यह तथ्य निम्नाङ्कित सत्य घटनासे उद्घाटित हो जाता है ।

मेरे एक पड़ोसी मित्र श्रीभटनागरजीका (जो स्वयं रामचरितमानसके बड़े प्रेमी पाठक हैं,) बारह वर्षीय लड़का देवेन्द्रकुमार अपने घरवालोंको बिना सूचना दिये कहीं चला गया । दोपहरको भोजनके लिये भी नियत समयपर जब वह घरपर न आया, तब

घरवालोंने चिन्तित होकर मोहल्ले एवं आस-पासमें उसकी खोज की ; किंतु कहीं कोई पता नहीं लगा। सायंकाल होनेतक पूरे मन्दसौर नगरमें सर्वत्र जहाँ-जहाँपर भी लड़केके आने-जानेके सम्पर्क-सूत्र हो सकते थे, वहाँ-वहाँ जाकर पूछ-ताछ की गयी। जब कहीं कुछ भी पता न चल पाया तो अन्तमें निराश हो पुलिस-स्टेशन जाकर रिपोर्ट दर्ज करायी गयी। बालकके दोनों बड़े भाइयोंने आस-पासके नगरोंमें पर्याप्त खोज की। मेरे मित्र भटनागरजी, जो स्वयं मध्य प्रदेश शासनके अवकाशप्राप्त पुलिस-कर्मचारी हैं, इतने अधिक चिन्ताग्रस्त और व्यग्र हो गये कि उन्होंने पुलिस-अधीक्षक-कार्यालयमें जाकर भारतके बड़े-बड़े नगरोंकी पुलिसको वायरलेससे बालकके लापता होनेकी सूचना भी प्रसारित करा दी।

दूसरे दिन जब वे अत्यन्त अधीर होकर मेरे पास आये तो मैंने उन्हें आश्वस्त करते हुए 'दीन दयालु बिरिदु संभारी। हरहु नाथ मम संकट भारी॥' के सम्पुट तथा 'उमा न कछु कपि कै प्रभुताई। प्रभु प्रताप जो कालहि खाई॥'के उपसम्पुटके साथ श्रीहनुमान्‌जीके सम्मुख सुन्दरकाण्डका पाठ करनेकी सानुरोध प्रेरणा दी। मेरे मित्रने निकटके हनुमान्-मन्दिरमें बैठकर उपर्युक्त सम्पुटों-सहित सुन्दरकाण्डका पाठ करना आरम्भ कर दिया। उन्होंने एक सौ पाठ करनेका संकल्प किया था, किंतु चौथे दिनतक ४९ पाठ ही पूर्ण होते-होते जब बालक देवेन्द्र स्वयं ही घरपर आ गया तो घरवालोंके आश्चर्य और आनन्दका ठिकाना न रहा। श्रीभटनागरजीको मन्दिरपर जैसे ही इसकी सूचना मिली तो वे अश्रुपूरित नेत्रोंसे श्रीहनुमान्‌जीका अभिषेक करते हुए आत्मविस्मृति-से हो गये। उनके परिवारमें हर्षकी लहर दौड़ गयी। सुन्दरकाण्डके पाठ एवं हनुमान्‌जीकी कृपाका चमत्कार प्रत्यक्ष देखकर मैं भी कुछ क्षणोंके लिये उनकी महिमामें डूबकर आत्मविस्मृत हो गया। श्रीराम! जय राम!! जय हनुमान्!!!

—भृगुनन्दन मिश्र

(४)

मैं तो स्वयं नौकर हूँ

उन दिनों स्वर्गीय श्रीलालबहादुरजी शास्त्री उत्तर-प्रदेशके गृह-मन्त्री थे। उनके एक मित्र उनसे मिलने लखनऊ आये जो वहाँ किसी परिचितके घर ठहरे हुए थे। उन्होंने फोनपर शास्त्रीजीसे मिलनेका समय पूछा। शास्त्रीजीने उनसे रात्रिमें ९ बजे आनेके लिये कहा, साथमें यह भी कह दिया कि 'मैं भोजनके लिये आमन्त्रित नहीं कर रहा हूँ, क्योंकि इन दिनों मैं अकेला ही हूँ।'

मित्रको आश्चर्य हुआ कि क्या शास्त्रीजीके यहाँ मन्त्री होनेके बाद भी, भाभी (श्रीमती ललिता देवी शास्त्री) ही भोजन तैयार करती हैं। जब वे रात्रिको शास्त्रीजीसे भेंट करने आये तो पूछने लगे, 'शास्त्रीजी! आपने यह क्यों कहा था कि मैं भोजनके लिये आमन्त्रित नहीं कर रहा हूँ?'

'इसलिये कि आजकल मैं यहाँ अकेला ही हूँ।'

'तो क्या भोजन भाभी स्वयं ही बनाती हैं? आपने कोई रसोइया या खानसामा नहीं रखा है अथवा किसी नौकर आदिकी भी व्यवस्था नहीं की है?'

'इसकी आवश्यकता ही क्या है? मैं स्वयं जो हूँ।' शास्त्रीजीने मुस्कराते हुए उत्तर दिया। 'एक नौकरका कार्य तो मैं स्वयं ही निपटा लेता हूँ।'

—'महाराज' कुसौली (दतिया)

भगवान्‌आद्य शंकराचार्यविरचित भगवती गङ्गाका स्तवन

[श्रीगङ्गाष्टकम्]

भगवति तव तीरे नीरमात्राशनोऽहं
विगतविषयतृष्णः कृष्णमाराधयामि।
सकलकलुषभङ्गे स्वर्गसोपानसङ्गे
तरलतरतरङ्गे देवि गङ्गे प्रसीद ॥ १ ॥

भगवति भवलीलामौलिमाले तवाम्भः
कणमणुपरिमाणं प्राणिनो ये स्पृशन्ति।
अमरनगरनारीचामरग्राहिणीनां
विगतकलिकलङ्कातङ्कमङ्के लुठन्ति ॥ २ ॥

ब्रह्माण्डं खण्डयन्ती हरशिरसि जटावल्लिमुल्लासयन्ती
स्वर्लोकादापतन्ती कनकगिरिगुहागण्डशैलात् स्खलन्ती।
क्षोणीपृष्ठे लुठन्ती दुरितचयचमूर्निर्भरं भर्त्सयन्ती
पाथोधिं पूरयन्ती सुरनगरसरित् पावनी नः पुनातु ॥ ३ ॥

मज्जन्मातङ्गकुम्भच्युतमदमदिरामोदमत्तालिजालं
स्नानैः सिद्धाङ्गनानां कुचयुगविगलत्कुङ्कुमासङ्गपिङ्गम्।
सायंप्रातर्मुनीनां कुशकुसुमचयैश्छन्नतीरस्थनीरं
पायान्नो गाङ्गमम्भः करिकलभकराक्रान्तरंहस्तरङ्गम् ॥ ४ ॥

आदावादिपितामहस्य नियमव्यापारपात्रे जलं
पश्चात्पन्नगशायिनो भगवतः पादोदकं पावनम्।
भूयः शम्भुजटाविभूषणमणिर्जह्नोर्महर्षेरियं
कन्या कल्मषनाशिनी भगवती भागीरथी पातु माम् ॥ ५ ॥

शैलेन्द्रादवतारिणी निजजले मज्जज्जनोत्तारिणी
पारावारविहारिणी भवभयश्रेणीसमुत्सारिणी।
शेषाहेरनुकारिणी हरशिरोवल्लीदलाकारिणी
काशीप्रान्तविहारिणी विजयते गङ्गा मनोहारिणी ॥ ६ ॥

कुतो वीचिर्वीचिस्तव यदि गता लोचनपथं
त्वमापीता पीताम्बरपुरनिवासं वितरसि।
त्वदुत्सङ्गे गङ्गे पतति यदि कायस्तनुभृतां
तदा मातः शातक्रतवपदलाभोऽप्यतिलघुः ॥ ७ ॥

गङ्गे त्रैलोक्यसारे सकलसुरवधूधौतविस्तीर्णतोये
पूर्णब्रह्मस्वरूपे हरिचरणरजोहारिणी स्वर्गमार्गे ।
प्रायश्चित्तं यदि स्यात्तव जलकणिका ब्रह्महत्यादिपापे
कस्त्वां स्तोतुं समर्थस्त्रिजगदघहरे देवि गङ्गे प्रसीद ॥ ८ ॥

(श्रीशंकरग्रन्थावली, खण्ड १८)

भावार्थ—(गङ्गे) देवि ! (मेरी कामना है कि) तुम्हारे तीरपर केवल तुम्हारा जलपान करता हुआ, विषय-तृष्णासे रहित हो मैं श्रीकृष्णचन्द्रकी आराधना करता हूँ । हे सकल पापनाशिनि ! स्वर्ग-सोपानरूपिणि ! देवि गङ्गे ! मुझपर प्रसन्न हो । हे भगवति ! तुम श्रीमहादेवजीके मस्तककी लीला-मयी माला हो । जो प्राणी तुम्हारे जलकणके अणुमात्रको भी स्पर्श करते हैं, वे कलिकलङ्कके भयको त्यागकर, देवपुरीकी चँवरधारिणी अप्सराओंकी गोदमें शयन करते हैं । ब्रह्माण्डको फोड़कर निकलनेवाली, महादेवजीकी जटा-लताको उल्लसित करती हुई, स्वर्गलोकसे गिरती हुई, सुमेरुकी गुफा और पर्वतमालासे झरती हुई, पृथ्वीपर लोटती हुई, पापसमूहकी सेनाको भर्त्सना (कड़ी फटकार) देती हुई, समुद्रको भरती हुई, देवपुरीकी पवित्र नदी गङ्गा हमें पवित्र करे । स्नान करते हुए हाथियोंके कुम्भस्थलसे झरते हुए मदरूपी मदिराकी गन्धके कारण मधुपवृन्द जिससे मतवाले हो रहे हैं, सिद्धोंकी स्त्रियोंके स्तनोंसे बहे हुए कुङ्कुमके मिलनेसे जो पिङ्गलवर्ण हो रहा है तथा सायं-प्रातः मुनियोंद्वारा अर्पित कुश और पुष्पोंके समूहोंसे जो किनारेपर ढका हुआ है, जिसकी तरङ्गोंका वेग हाथियोंके बच्चोंकी सूँड़ोंसे आक्रान्त हो रहा है, वह गङ्गाजल हमारा कल्याण करे । पहले ब्रह्माके कमण्डलुमें जलरूपसे, फिर शेषशायी भगवान्‌के पवित्र चरणोदकरूपसे और तदनन्तर महादेवजीकी जटाको सुशोभित करनेवाली महर्षि जह्नुकी कन्या, पापनाशिनी, भगवती भागीरथी मेरी रक्षा करें । हिमालयसे उतरनेवाली, अपने जलमें गोता लगानेवालोंका उद्धार करनेवाली, समुद्रमें मिलनेवाली, संसार-संकटोंके समूहका नाश करनेवाली, शेषनागका अनुकरण करनेवाली, शिवजीके मस्तकपर लताके समान सुशोभित, काशी-क्षेत्रमें बहनेवाली, मनोहारिणी गङ्गाजी (सर्वत्र) विजयिनी हों । यदि तुम्हारी तरङ्ग नेत्रोंके सामने आ जाय, तो फिर संसारकी तरङ्गें (भौतिक वासनाएँ) कहाँ रह सकती हैं ? तुम अपना जलपान करनेपर वैकुण्ठलोकमें निवास देती हो । हे गङ्गे ! यदि जीवोंका शरीर तुम्हारी गोदमें छूट जाता है, तो मातः ! उसके आगे इन्द्रपदकी प्राप्ति भी अत्यन्त तुच्छ मालूम होती है । तीनों लोकोंकी सार सर्वदेवाङ्गनाएँ जिसमें स्नान करती हैं, ऐसे विस्तृत जलवाली पूर्ण ब्रह्मस्वरूपिणी, स्वर्गमार्गमें भगवान्‌के चरणोंकी धूलि धोनेवाली, गङ्गे ! जब तुम्हारे जलका एक कणमात्र ही ब्रह्महत्यादि पापोंका प्रायश्चित्त है तो त्रैलोक्यपापनाशिनि ! तुम्हारी स्तुति करनेमें कौन समर्थ है ? देवि गङ्गे ! आप प्रसन्न हों ।